समकालीन साहित्य, संस्कृति, कला और विचार का मासिक

उत्तर प्रदेश

मई, 2026, वर्ष 50

अन्तरिक्ष

₹ 15/-

अब तो बता ज़िन्दगी

–विश्व भूषण

अब तो बता ज़िंदगी, ये किस मोड़ पे मैं आता हूँ
तू मुझको सताती है, या मैं तुझको सताता हूँ

हैं जाने वाले जा रहे, मैं खड़ा उदास कितना
कौन सुनता है मेरी, मैं क्या बताता हूँ

गहरा बहुत एक जख़्म, दर्द भी बे–इन्तेहाँ
वो जख़्म भूलने में कितने जख़्म खाता हूँ

तेरा भी क्या दोष दूँ, किस्मत से क्या करूँ गिला
ये सारी बदक़िस्मती भी मैं खुद बुलाता हूँ

ये बंद दीवारें भी शायद बड़ी ग़मगीन हैं
ये खड़ी हैं साथ, इन्हें ही सब सुनाता हूँ

हमने सुना था वक़्त की भी चोट होती है
पहले न माना था, मगर अब मान जाता हूँ

पहले भी हादसे हुए, ख्वाब फिर भी बच गए
आज इन सपनों को खुद ही जलाता हूँ

जिंदगी कि दौड़ में कैसा मुकाम आ गया
शुरुआत से पहले ही, मैं सब छोड़ जाता हूँ

बहुत तकलीफ़ होती है 'आम–इंसान' होने में
यह भी हो न पाता हूँ, वो भी बन न पाता हूँ।

◆

पता : वाराणसी–221001 (उ.प्र.)
मो. : 9454321022
ईमेल : authorvishwa@gmail.com

अनुक्रम

स्मृति शेष

- राजी सेठ : स्त्री संवेदनाओं का मुखर स्वर ❑ कुमकुम शर्मा / 3

लेख

- महादेवी : आधुनिक युग की मीरा ❑ डॉ. मनीषा गिरी / 6

व्यंग्य

- सुबह की नींद ❑ डॉ. संजय कुमार / 9

लघु कथा

- वीआईपी / परीक्षा ❑ डॉ. अलका अस्थाना 'अमृतमयी' / 10

कहानियाँ

- दो दिन की ज़िन्दगी ❑ आभा श्रीवास्तव / 11
- कोट का सफर ❑ स्वाति बरनवाल / 14

कविताएँ

- अब तो बता ज़िन्दगी ❑ विश्व भूषण / आवरण–2
- आसपास बनारस कर लूँ...... ❑ जितेन्द्र कुमार दुबे / आवरण–3
- ऋतुओं की रागिनी ❑ अंशिका सक्सेना 'अभिषेक' / 23
- खोया पंछी ❑ कौशिकी भारद्वाज / 25
- जिन्हें फेंक दिया गया ❑ महेश कुमार केशरी / 26
- मन का पिंजरा ❑ विमल किशोर श्रीवास्तव / 28

पुस्तक समीक्षा

- बूढ़ी तथा अन्य कहानियाँ ❑ मंजू किशोर 'रश्मि'

उत्तर प्रदेश

❑ वर्ष–50 ❑ अंक–87
❑ मई, 2026

संरक्षक एवं मार्गदर्शक : ❑ **संजय प्रसाद**
अपर मुख्य सचिव, सूचना

प्रकाशक एवं स्वत्वाधिकारी : ❑ **विशाल सिंह**
सूचना निदेशक, उत्तर प्रदेश

❑ **अरविन्द कुमार मिश्र**
अपर निदेशक, सूचना

❑ **चन्द्र विजय वर्मा**
सहा. निदेशक (प्रकाशन)

उप सम्पादक सूचना : ❑ **दिनेश कुमार गुप्ता**

सहयोग : ❑ **अजय कुमार द्विवेदी**
सहयुक्त सम्पादक

भीतरी रेखांकन : **अवधेश मिश्रा**

सम्पादकीय संपर्क : सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, पं. दीनदयाल उपाध्याय सूचना परिसर, पार्क रोड, लखनऊ
ईमेल : **upmasik@gmail.com**

दूरभाष : कार्यालय : ई.पी.ए.बी.एक्स 0522–2239132–33, 2236198, 2239011

पत्रिका information.up.nic.in वेबसाइट पर उपलब्ध है।

❑ **एक प्रति का मूल्य** : पंद्रह रुपये
❑ **वार्षिक सदस्यता** : एक सौ अस्सी रुपये
❑ **द्विवार्षिक सदस्यता** : तीन सौ साठ रूपये
❑ **त्रैवार्षिक सदस्यता** : पांच सौ चालीस रुपये

प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे मासिक पत्रिका 'उत्तर प्रदेश' और सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. लखनऊ का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।
—सम्पादक

आवर्तन

प्रकृति में हर पल बदलाव होता रहता है। नदी कभी पीछे मुड़कर नहीं देखती। उसमें लहरों का आना–जाना लगा रहता है। उत्थान और पतन जीवन का नैसर्गिक वैशिष्ट्य है। हर दिन नया सूरज प्रकट होता है। नई बांसुरी को नए स्वर की जरूरत होती है। पुराने से काम नहीं चलता। प्रकृति में हर क्षण नया हो रहा है। हर दिन नया, हर रात नई, हर घंटा, मिनट और सेकेंड नया तो आदमी पुरातनता के व्यामोह में क्यों उलझा हुआ है। वह अतीत के झंझावातों से उबर ही नहीं पा रहा है। अतीत की बुनियाद पर ही वर्तमान का पुरुषार्थ भविष्य के यथार्थ गढ़ता है, इस सच को नकारा नहीं जा सकता लेकिन अतीत के गड़े मुर्दों को उखाड़ते रहना तो कहीं से रचनाधर्मिता नहीं है। वैसे तो साल का कोई भी महीना किसी से भी कमतर नहीं है लेकिन विचारणीय तो यह है कि हमने उसका उपयोग किस तरह किया? मई माह का अपना गौरवशाली इतिहास है। पहला तो यह श्रमशीलता का प्रतिनिधित्व करने वाला माह है। इसलिए इसका महत्व और भी बढ़ जाता है। गीता में कर्म योग, भक्ति योग और ज्ञान योग की चर्चा है। भक्ति और ज्ञान पृथक तो हैं लेकिन कर्म उनमें समाहित है। बिना कर्म के बात बनती ही नहीं। साहित्य के साथ भी कुछ ऐसी ही बात है। वहां भी कठिन श्रम–साधना की जरूरत होती है। विचारों के घोड़े तब दौड़ पाते है, जब उस स्तर का अध्ययन–अध्यवसाय हो। यह माह इसलिए भी बेहद अहम है क्योंकि इस माह में रवींद्रनाथ टैगोर, सुमित्रानंदन पंत, सत्यजीत रे, महावीर प्रसाद द्विवेदी, गिरीश कर्नाड, काजी नजरुल इस्लाम और मीर तकी मीर जैसी साहित्यिक विभूतियों का जन्म हुआ। वहीं इसी माह में हजारी प्रसाद द्विवेदी, कैफी आजमी, कमला दास, मजरूह सुल्तानपुरी, आर.के. नारायण, सुभद्रा सेन गुप्ता, बशीर बद्र और सुकांत भट्टाचार्य प्रभृति साहित्य मनीषियों ने इस धरा धाम से महाप्रयाण किया। यह संख्या तो अंगुली पर गिनने भर है। देखा जाए तो यह संख्या बहुत अधिक होगी। जिन पर साहित्य समाज को सदा गर्व रहेगा। इसी माह की 25 मई को देश की राष्ट्रपति द्रोपदी मुर्मू ने राष्ट्रपति भवन में 66 हस्तियों को एक अलंकरण समारोह में पद्म पुरस्कार प्रदान किए। कला के क्षेत्र में असाधारण और विशिष्ट सेवा के लिए बॉलीवुड अभिनेता धर्मेन्द्र को मरणोपरान्त और शास्त्रीय संगीतकार एवं वायलिन वादक एन. राजम को पद्म विभूषण से सम्मानित किया गया।

इस अंक में राजी सेठ पर कुमकुम शर्मा और महादेवी वर्मा पर डॉ. मनीषा गिरी का आलेख विशेष आकर्षण का केंद्र है। आभा श्रीवास्तव की कहानी दो दिन की जिंदगी, स्वाति बरनवाल की कहानी कोट का सफर अपेक्षा करता हूँ कि आप सुधी पाठकों को पसंद आएगी बल्कि सोचने–समझने और जटिल सामाजिक समस्याओं के समाधान तलाशने को विवश भी करेगी। इसके अतिरिक्त पूर्व की भांति इस बार भी कविता, पुस्तक समीक्षा आदि हैं। अंक आपको कैसा लगा, सम्भव हो तो अपने सारस्वत सुझावों से भी हमें अनुप्राणित करें जिससे उन त्रुटियों से बचा जा सके और पत्रिका को पूर्वापेक्षा अधिक रोचक, पठनीय और मननीय बनाया जा सके। आपके स्नेह–सहयोग और प्रतिक्रियाओं का हमें सतत इंतजार रहेगा।

● **दिनेश कुमार गुप्ता**

राजी सेठ : स्त्री संवेदनाओं का मुखर स्वर

❑ कुमकुम शर्मा

राजी सेठ एक ऐसी लेखिका रही हैं जिन्होंने उम्र के लिहाज से बहुत देर से लेखन की शुरुआत की लेकिन उन्होंने पाठकों के लिए साहित्य की एक बेहतरीन दुनिया रची जो हमेशा याद की जायेगी। वे हिन्दी के महत्वपूर्ण कथाकारों में शामिल रहीं परंतु उन्होंने हमेशा साहित्यिक खेमेबाजी से से दूर रहकर अपने पाठकों की प्रिय लेखिका बने रहना ही चुना और खामोशी से अलविदा कर गई। एक साक्षात्कार में बातचीत के दौरान उन्होंने कहा था, कि मेरे लेखन के मूल में समाज, सकारात्मक और जिन्दगी के प्रति प्रेम है। मैं जैसा समाज या पात्र चाहती हूँ, अपने लेखन में उसकी ओर इशारा करती हूँ। मेरे सारे चरित्र मेरी कामना के चरित्र हैं, मैं किसी भी जुलूस में शामिल नहीं हूँ, न घर के, न बाहर के। रवींद्रनाथ टैगोर ने कहा है कि 'जीवन के प्रति हमारा उत्साह वह है जो हमारे अंदर बहता है, जब हम ही बीमार हों तो समाज को क्या देंगे। एक व्यक्ति के तौर पर मैं निराशक्त हूँ, पर यह नहीं चाहती कि मेरी रचनाओं में यह निस्संगता छन कर आये। लेखक के तौर पर मैं वह पात्र हूँ जिसमें समाज का भोजन पकाया जाता है। बहुत पहले राजी सेठ जी की एक कविता पढ़ी थी, शीर्षक था,

आत्मन का लिबास।
घर भर को प्यारी
बहुत दुलारी चौखट के भीतर
पैर रख चुकी
दिपदिपाती स्त्री,
प्यारी क्यों न होती
स्त्री के पास ही तो था जादू का पिटारा
सदियों पुराना
स्त्री के पास ही तो थे,
बाबा आदम के जमाने से
सदा साथ
दो दो हाथ
हाथों में जादू रांधना, पकाना, जीमना–जिमाना

जोड़ना सँवारना
फटे को थिगड़ी
तपे को तरावट
रूठे को मनुहार
ढहते को दीवार
भूखे को पकवान
अलसाए को बिछौना
वंश को कोख
बिलखते को गोद
स्त्री के पास सब कुछ कितना कुछ तो था,
छत थी,
रखावन,
खिलावन लुगड़ा बिछावन
दो जादुई हाथ पैर थे,
देह थी, प्राण थे,
आत्मन भी कहीं न कहीं होगा ही होगा।

आत्मन का लिबास बेसुध बौराई ने पता नहीं कब कहाँ रख दिया होगा। **—राजी सेठ**

पता नही क्यों इस कविता को जब भी पढ़ती हूँ, माँ का चेहरा सामने आ जाता है। सबको सब कुछ देने के लिए तत्पर। अपने लिए कभी कुछ चाहा नहीं, मांगा नहीं, यही वह वजह रही कि उनके जाने के बाद हम सब एक अजीब से खालीपन से घिर गए। साल दर साल बीतते रहे पर वो याद आती रहीं। हमेशा ऐसा लगता कि वे किसी से कुछ कहे मांगे बिना असन्तुष्ट ही चली गईं। सच वे अपना आत्मन का लिबास कहीं रखकर भूल गईं थी जो हमें उनके जाने के बाद मिला। राजी सेठ की कविताएँ स्त्री विमर्श की सशक्त रचनाएँ हैं, जो पाठक को भीतर तक झकझोरती हैं और जीवन दर्शन के एक पृथक पाठ से परिचित कराती हैं। एक स्थान पर वे कहती हैं, ''मैं स्त्री हूँ जानती हूँ मुझे बहुत सा गुस्सा सहना पड़ा था जो वस्तुतः मेरे लिए नहीं था।'' अपनी कविता 'कौन सी आत्मा' में वे सवाल करती हैं—

तुम कौन, कौन सी आत्मा की बात कर रहे हो? वह जिसे अस्त्र काट नहीं सकता, अग्नि जला नहीं सकती, जो अछेद्य, अभेद्य, प्रकाशवान है, या वह जो पाव रोटी की दुकान के बाहर खड़ी, रोशनदान के सींखचों का बल तौल रही है।

राजी सेठ की कविताएं बोलती हैं, अपनी बात कहती हैं। उनकी कविताओं में स्त्री मुखर है। प्रेमचंद युग के बाद के उत्तर आधुनिक काल के साहित्य लेखन में जिन लेखिकाओं के नाम आते हैं उनमें राजी सेठ का स्थान विशेष है। बदलते समय के साथ साहित्य भी प्रत्येक युग में युगीन आवश्यकताओं के अनुसार साहित्य नया रूप धारण करता है। राजी जी ने तत्कालीन परिवेश का यथार्थ चित्रण अपने लेखन में किया है। पारदर्शी व्यक्तित्व और पारदर्शी लेखन की स्वामिनी राजी सेठ 04/अक्टूबर/1935 में नौशेरा छावनी (अविभाजित भारत) में पैदा हुई, उनका बचपन विभाजन की त्रासदी को देखते हुए गुजरा। 1942 तक पिता के साथ वहीं रहने के बाद लाहौर से आने के बाद उनका परिवार उत्तर प्रदेश के शाहजहाँपुर में बस गया, अतः उनकी इंटर तक की शिक्षा वहीं हुई। शाहजहाँपुर में उच्च शिक्षा के लिए शिक्षण संस्थान न होने के कारण स्नातक की शिक्षा के लिए राजी जी ने लखनऊ विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। उन्होंने छात्रावास में रहकर आगे की शिक्षा पूरी की। अनेक आर्थिक चुनौतियों के बावजूद परिवार ने लड़की को शिक्षित करने के लिए यह महत्वपूर्ण निर्णय लिया जो उस समय के हिसाब से आश्चर्यजनक था।राजी सेठ को पढ़ने और लिखने का शौक था। अति संवेदनशील होते हुए भी उन्होंने लिखना बहुत देर से शुरू किया। उनकी पहली कहानी अज्ञेय जी द्वारा संपादित पत्रिका 'नया प्रतीक' में 1975 में प्रकाशित हुई थी उन्होंने अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. किया था। साहित्यानुराग के साथ उनकी रुचि दर्शन में भी थी। भारतीय धर्म और दर्शन पर विशेष अध्ययन के लिए वे गुजरात भी गई थी।

राजी सेठ ने साहित्य की सभी विधाओं में लिखा। उन्होंने भावुक मन से सुंदर कविताएं रचीं तो यथार्थ की कहानियाँ भी लिखीं। जिंदगी की जटिल बुनावट से उपन्यास के गंभीर कथानक रचे तो कई महत्वपूर्ण अनुवाद भी किए। राजी जी का साहित्य कर्म क्लासिक और आधुनिक साहित्य के अपूर्व समागम के लिए जाना जाता है। राजकमल से प्रकाशित उनका उपन्यास 'तत्सम' इसी कारण विशिष्ट है, सूक्ष्मता, सघनता और समृद्ध रचनाशीलता के लिए इस कृति को साहित्य में विशेष स्थान मिला है। हाल ही में विगत 60 वर्षों की कालजयी रचनाओं में 'तत्सम' को शामिल किया गया है। उनकी अनेक पुस्तकें कई विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों में पढाई भी जाती हैं। उनकी कृतियों पर अनेक शोध ग्रंथ लिखे जा चुके हैं। अंग्रेजी सहित राजी जी की कृतियों के बहुत सी भारतीय और यूरोपीय भाषाओं में अनुवाद भी प्रकाशित हुए। अनेक वर्षों तक उन्होंने साहित्यिक पत्रिका 'युग साक्षी' का सह संपादन भी किया।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य में राजी सेठ एक विशिष्ट पहचान रखती हैं, आधुनिक वैचारिक पृष्ठभूमि के आधार पर जीवन के कटु अनुभवों की कहानी कहने वाली राजी सेठ ने कहानी के पारस्परिक ढांचे को तोड़ते हुए ऐसी कहानियाँ लिखीं जो किसी के भी मन को भीतर तक झकझोरने का सामर्थ्य रखती हैं। सन् 1970 के बाद वे कथा लेखन में सक्रिय होती हैं। उन्होंने एक लम्बे समय को बदलते हुए देखा, अनुभव किया और अपने लेखन में अपनी कहानियों में बड़ी शिद्दत के साथ अभिव्यक्त किया। राजी जी ने अपनी अंतरदृष्टि के अध्ययन से स्त्री के मनोविज्ञान को आज के युग समाज के ज्वलंत संदर्भों की पीड़ाओं, विसंगतियों और अपेक्षाओं के परिप्रेक्ष्य में परखा और व्याख्यायित किया है। राजी जी ने समाज में सहज परिमार्जन की प्रक्रिया को अपनाते हुए स्त्री को उसके स्त्रीत्व की रक्षा करते हुए वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को नकारते देखा है।

'तत्सम' उपन्यास नायिका वसुधा की कहानी है। वसुधा उच्च मध्यमवर्गीय एक विधवा स्त्री है, जो स्वयं के लिए असुरक्षा की भावनाओं से घिरा जीवन व्यतीत कर रही है। वह एक प्रोफेसर है। इस उपन्यास में वसुधा के जीवन और उसके मानसिक अंतर्दवन्द्व को दिखाया गया है। उपन्यास के सभी पात्र आंतरिक उठा–पटक से घिरे हुए हैं। उनके स्त्री पात्रों का संघर्ष सर्वाधिक व्यापक और घना है। इसके अतिरिक्त 'निष्कवच' उपन्यास 1995 में भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हुआ। 'अंधे मोड़ से आगे', 'तीसरी हथेली', 'यात्रा मुक्त', 'दूसरे देश काल में', 'सदियों से', 'यह कहानी नहीं', 'किसका इतिहास', 'गमे हयात ने मारा', 'खाली लिफाफा', 'मार्था का देश', 'यहीं तक', आदि उनके सुप्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं।

'अंधे मोड़ से आगे' उनका पहला कहानी संग्रह है जो 1981 में राजकमल प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित हुआ था। 'अंधे मोड़ से आगे' इस संग्रह की अंतिम कहानी है। इस कहानी की नायिका अपने पति सुरजीत से तंग है। पति का घर छोड़कर वह अपने बॉस के घर चली जाती है, वहाँ पहुँचते ही उसे अपनी गलती का अहसास होता है। यह एक सशक्त और बोल्ड स्त्री की कहानी है जो लीक से हटकर कोई भी निर्णय लेने में संकोच नहीं करती।

'उसका आकाश' वृद्धावस्था की बेबसी और पीड़ा की कहानी है। यह एक विधुर के अकेलेपन की त्रासद कहानी है। 'किसके पक्ष में' उस नारी की कहानी है जो अपने मातृत्व और अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व के द्वंद्व में टूटती है। उनकी अनेक कहानियों में अकेलेपन से जूझते हुए वृद्ध पात्र हैं। 'अंधे मोड़ से आगे' और 'तीसरी हथेली' के बाद 'यात्रा मुक्त' राजी सेठ का तीसरा कहानी संग्रह है। 'यह कहानी नहीं' संग्रह में लेखिका की मानवतावादी, संवेदनशील, देश के विभाजन की बातें, मृत्यु बोध, नारी की पीड़ा को अभिव्यक्त करने वाली कहानियाँ हैं। 'सदियों से' प्रेम और विवाह के बाद की परिस्थितिजन्य स्थितियों पर लिखी गई है। 'किसका इतिहास' राजी सेठ की कहानियाँ जिन्दगी का पंचनामा हैं। उनकी कहानियाँ जीवन को समग्र रूप से देखने की कहानियाँ हैं।

राजी सेठ के व्यक्तित्व निर्माण में उनके माता पिता, भाई, गणमान्य साहित्यकारों तथा गुरुओं का विशेष प्रभाव दिखाई देता है। अन्याय के खिलाफ लड़ने तथा विद्रोह करने की प्रकृति उनके व्यक्तित्व की बड़ी खूबी थी। अपने आसपास होते हुए अन्याय को चुपचाप देखना उन्हें नहीं आता था, अनास्था और असंतोष उनके भीतर उफनने लगता था, यही वह वजह रही कि उनके साहित्य में उनका विद्रोही स्वभाव स्पष्ट झलकता है। राजी सेठ की अनेक कहानियाँ कविताओं का अनेक भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ। उनकी कुछ कृतियों का अंग्रेजी में भी अनुवाद हुआ।

साहित्यिक उपलब्धियों पर विचार करें तो 1996–97 वे भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान शिमला में फेलो रहीं। जनरल कौंसिल साहित्य अकादमी नई दिल्ली तथा हिन्दी सलाहकार समिति, हिन्दी निदेशालय दिल्ली की मनोनीत सदस्य चुनी गई। सन् 1993–94 में हिन्दी अकादमी समिति की कार्यकारी सदस्य भी रहीं।

उन्हें कलकत्ता कथा साहित्य का 'रचना' पुरस्कार 1985 में तथा उपन्यास 'तत्सम' पर भारतीय भाषा परिषद कलकत्ता से 1985 में पुरस्कृत हुईं। उन्हें साहित्य में विशेष योगदान के लिए हिन्दी अकादमी सम्मान पुरस्कार दिया गया। नौ वर्षों तक राजी सेठ ने साहित्यिक पत्रिका 'युग साक्षी' का सह संपादन किया। वे अनंत गोपाल शेवड़े कथा सम्मान सहित अनेक सम्मानों से नवाजी गईं। हाल ही में उन्हें भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित उनकी पुस्तक 'गमे हयात ने मारा' के लिए दक्षिण कोरिया द्वारा स्थापित प्रथम टैगोर लिट्रेरी अवार्ड से सम्मानित किया गया है। राजी सेठ ने देर से लेखन शुरू अवश्य किया मगर बहुत कम समय में हिन्दी साहित्य को अधिक समृद्ध किया था। अपनी कहानियों, कविताओं के जरिए वे हमेशा याद आयेंगी। ◆

पता : जानकीपुरम, लखनऊ
मो. : 8960000962

महादेवी : आधुनिक युग की मीरा

❑ डॉ. मनीषा गिरी

आधुनिक युग के प्रमुख छायावादी कवियों के काव्य में रहस्य भावना अधिक उपलब्ध होती है किन्तु महादेवी के काव्य में विशुद्ध रहस्य का उत्कर्ष पूर्ण तीव्रता से दृष्टिगत होता है। इस शंका का निवारण प्रसाद जी के इस कथन से होता है कि, 'वर्तमान हिन्दी में अद्वैत रहस्यवाद की सौन्दर्यमयी व्यंजना होने लगी है, वह साहित्य में रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है। इसमें अपरोक्ष अनुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य द्वारा, अहं का हृदय से समन्वय करने का सुन्दर प्रयत्न है।...वर्तमान रहस्यवाद की धारा भारत की निजी सम्पत्ति है, इसमें संदेह नहीं।'

(काव्य–कला तथा अन्य निबंध, पृष्ठ6 5) महादेवी वर्मा ने ''यामा'' की भूमिका में रहस्यवाद की अवधारणा को स्पष्ट किया है, 'क्योंकि मानवीय सम्बन्धों में जब तक अनुराग– जनित आत्म विसर्जन का भाव नहीं घुल जाता तब तक वे सरस नहीं हो पाते और जब तक यह मधुरता सीमान्त नहीं हो जाती... जब तक हृदय का अभाव दूर नहीं होता। इसी से इस अनेकरूपता के कारण पर एक मधुरता का आरोपण कर उसके निकट आत्मनिवेदन कर देना इस काव्य का दूसरा सोपान बना। इस रहस्यवाद रूप के कारण ही 'रहस्यवाद' नाम दिया गया।' (पृष्ठ 45)

महादेवी के काव्य में आत्मा का चित्रण मूलतः नारी–रूप में तथा उस परम सत्तापक्ष चित्रण पुरुष रूप में मिलता है। महादेवी ने स्वकीया प्रकिया आदि भेदों से स्वतंत्र होकर स्वयं को उसकी अधीरा प्रेयसी के रूप में प्रस्तुत किया है, क्योंकि हृदयगत अन्यतम रागात्मक सम्बन्धों में प्रिया रूप ही सर्वाधिकार मधुर है। कहीं–कहीं विशुद्ध रूप में दीपक को जीवात्मा का प्रतीक मानकर उस पर मानवीय गुणों का आरोपण कर उन्होंने रहस्य भाव की मधुर अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है। कह सकते हैं कि महादेवी के काव्य में परमात्मा के विरह में व्यथित आत्मा की सुन्दर अभिव्यक्ति व्यंजित हुई है।

ओ चिर नीरव
मैं सहित विकल
तेरी समाधि का सिद्धि अकल।

सामान्यतः रहस्यवाद के अन्तर्गत आत्मा–परमात्मा के रागात्मक सम्बन्ध का समन्वय होता है इसलिए उसमें तीन विषयों का समावेश रहता है–आत्मा, परमात्मा और प्रकृति। प्रकृति

आत्मा और परमात्मा के बीच सम्बन्ध स्थापित करने में, माध्यम का काम करती है। सर्वप्रथम उसी के चेतन–रूप में आत्मा को परमात्मा के छवि–रूप का दर्शन प्राप्त होता है। यह रहस्यवाद की पहली अवस्था है जिसमें जिज्ञासा और विस्मय का अत्यधिक समावेश रहता है। महादेवी ने इस अवस्था के चित्रण में प्रकृति उपादान के साथ–साथ अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों को भी स्थान दिया है–

कनक से दिन, मोती सी रात
सुनहली साँझ, गुलाबी प्रात।
मिटाता–रँगता बारम्बार
कौन जग का वह चित्राधार?

आत्मा की इस विवशता से ही सच्चे रहस्यवाद का उदय हुआ है। 'अलि! कैसे उनको पाऊँ?' इस विवशता (अवस्था) का सुन्दर और मार्मिक अनुभूतिपूर्ण चित्रण महादेवी ने किया है। ऐसी ही मधुर व्यंजना महायशी मीरा के कुछ पदों में भी मिलती है। 'भज मन चरण कमल अविनाशी/देसाई देते धर्म गगन बिच, तेताइ सब उठ जासी।' प्रिय से विरहानुभूति मीरा में है जिसे 'माधुर्य भाव की भक्ति' कहते हैं तो महादेवी में भी गहरी विरह–व्यंजना मिलती है। यह रहस्यानुभूति ही मीराबाई की आध्यात्मिक भावना को रहस्यवाद से सम्पृक्त करता है। भारतीय नारी–जीवन और समाज में नारी के प्रति जो जटिल बंदिशें और पुरुष–वर्ग की घिनौनी सोच रही है, वह सदैव उसका प्रतिरोध करती रही। नाना विध सामाजिक बन्धनों को तोड़ फेंकने में उनका जो प्रयास लगा होगा उसका मूल्यांकन संभव नहीं। ये महादेवी का अपना आक्रोश है। अतीत में झाँककर देखें तो मीराबाई ने भी सामाजिक रूढ़ियों और कुरीतियों के प्रति घोर संघर्ष किया। उसे तोड़ने की कोशिश की। वह सामाजिक रूढ़ि–बन्धनों से नारी को मुक्त करना चाहती थी। परिवार, समाज की कुंठित सोच और प्रतिबन्धन के विरुद्ध निरन्तर लड़ती रहीं, लांछन सहती रहीं। परिवार के लोगों ने तो उन्हें जहर पिलाकर मारना (तक) चाहा, किन्तु वे सब सहकर, भोगकर उन्होंने अपने को कमजोर नहीं होने दिया। वही अदम्य साहसिकता, निर्भीकता और संघर्षशीलता महादेवी के विराट व्यक्तित्व में भी दिखती है। उन्होंने नारी की लौह–शृंखला को तोड़कर उसे मुक्त (स्वतन्त्र) करना चाहा–

पीर का प्रिय आज पिंजर खोल दे
हो उठी है चंचु छूकर
लीबिया भी वेणु स्वर
वन्दना स्पन्दित व्यथा से
सिहरता जड़ मौन पिंजर
अब उड़ेगा शिथिलकाय
पंख पर वे सजल सपने तोल दो।

महादेवी मे भरपूर आत्मविश्वास है। उनकी कविता हो या गद्य–साहित्य सभी में उनकी नारी सम्बन्धी भावनाएँ मुखरित हुई हैं। उनकी कविता–कृतियाँ हैं–नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत, दीपशिखा, आदि। प्रथम चार, ''यामा'' में संकलित हैं। दीपशिखा प्रकाश की लौ–सी है। 'हिमालय' उनका सम्पादित ग्रन्थ है। उनकी आरम्भिक कृतियों में निस्सारता, मृत्युबोध और अंधेरे का परिवेश है। उन्हें अंधेरे का अस्तित्व स्वीकार है परंतु अंधेरे से लड़ती रहती हैं। उनकी काव्य–यात्रा 'तमसो मां ज्योतिर्गमय' की–ही यात्रा है उनमें पुष्पोचित कोमलता के साथ पाषाण कठोरता भी है। एक ओर वात्सल्य है तो दूसरी ओर नई अनुभूति की व्यंजना है। सुभद्रा कुमारी चौहान को स्मरण करती हुई वह लिखती हैं, 'नारी के हृदय में जो गंभीर ममता सजल वीर भाव पैदा होता है वह पुरुष के उस शौर्य से अधिक दिव्य और उदात्त रहता है। पुरुष अपने व्यक्तिगत या समूहजन राज्य हिस्सा के लिए भी वीर धर्म अपना सकता है और अहंकार की तृप्ति मात्र के लिए भी। पर नारी अपने सृजन की बाधाएँ दूर करने के लिए या अपनी कल्याण–सृष्टि की रक्षा के लिए ही दृढ़ बनती है।' सुभद्रा जी जैसा वीर–भाव महादेवी में भी है।

अचल हिमगिरि के हृदय में
आज चाहे कंप होले
या प्रलय के आँसुओं में
मौन असित व्योम रो ले।
आज पी आलोक के डोले
तिमिर की घोर छाया
जाग या विद्युत शिखाओं में
निठुर तूफान बोले
पर तुझे है नाश पथ पर
चिन्ह अपने छोड़ जाना।

महादेवी अपने व्यक्तित्व को इस बहाने नारी के व्यक्तित्व को सुरक्षित रखती हैं। उनकी कविता नारी की आत्मा की अभिव्यक्ति है। उसके लिए जीवन एक पथ है, एक अणुव्रत साधना। इस पथ पर उनके पद अग्रसर हैं। नारी होने के नाते वे अपनी अनुभूतियों को सूचनात्मक रूप देती हैं परंतु अपनी कविता के माध्यम से सुख–दुख, मिलन विरह और तिमिर –आलोक के बीच अपनी निरंतर साधना– यात्रा की चाह व्यक्त करती रहती हैं। नारी विषयक उनके विचार

उनकी कविताओं में जहाँ नारी के अंतर्जगत और अपने निजी अनुभूतियों के रंग में रँगा है, वहां उनके ''अतीत के चलचित्र''—''शृंखला की कड़ियां'' और ''किस्मत की रेखाएँ'' के साथ गद्य— रचनाओं सामाजिक संदर्भ से अधिक मुखर हो उठा है।

अतीत के चलचित्र में सात रेखाचित्र नायिका प्रधान हैं। ये नायिकाएँ विलोम परिस्थितियों के कटु आघातों को सहकर भी सद्‌गुणों का विकास करने वाली भारतीय नारियाँ हैं। भावुकतावश महादेवी उन्हें सीता, सावित्री के समकक्ष मान लेती हैं परंतु उनके कष्टों का कारण प्रायः पुरुष समाज है। इसी कारण उन्होंने अनेकशः पुरुषों के प्रति व्यंग्य एवं कटु भावों की अभिव्यक्ति की है। बाल विवाह और अनमेल विवाह की शिकार बिट्टू के संस्मरण में वह कहती हैं— 'जिस समाज में 65 वर्ष का व्यक्ति चौदह वर्ष की पत्नी चाहता है, वहाँ 32 वर्ष की बिट्टू के पुनर्विवाह की समस्या सुलझा लेना टेढ़ी खीर थी। उसके भाग्य से ही सौ वर्ष की पूर्णायु वाला कोई पुरुष न मिला और उसके जन्म—जन्मान्तर के अखण्ड पुण्यफल से 54 वर्ष के बाबा ने उसके उद्धार का बीड़ा उठाया।' विदुषी लेखिका ने नारी जाति को संभवतः सामाजिक शृंखलाओं से बाधित दिखाया है और पुरुषों को उसके शोषण के लिए उत्तरदायी ठहराया है।

'स्मृति की रेखाएं' कृति में सात रेखाचित्रों को स्थान मिला है। उनके अधिकांश रेखाचित्रों में समाज तथा भाग्य की विशेषताओं से पीड़ित नारियों जीवन चरित्र अंकित हैं। अनमोल विवाह में से वंचित बूटा (मुन्नू की माई) दुर्व्यवहार से लांछित के पति आहत है। महादेवी वर्मा के नारी—चरित्र पुरुष पात्रों की अपेक्षा अधिक सजग, क्षमाशील तथा कर्तव्यनिष्ठ है। मुन्नू की माँ बूटा निठल्ले पति से बँधकर भी आँसू नहीं बहाती और पति तथा ससुर की तन—मन से सेवा करती है। परन्तु बिटिया पुरुष समाज की हृदयहीनता के कारण लांछित होकर आत्महत्या कर लेती है। नारी का चरम विकास मातृत्व में है जो हमें गुँगिया में दिखाई देता है। गुँगिया ने मौसी दुलारी का स्नेह—प्यार से पालन किया। उनकी स्मृति—सम्बन्धी रचनाओं में नारी भावनाओं की इतनी गहराई और उसकी मार्मिक अभिव्यंजना है कि उससे गुजरते हुए पाठक—मन करुणार्द्र हो जाता है।

इसी प्रकार पथ के साथी में छह रेखाचित्र संकलित हैं जिनमें नारी—पात्र सुभद्रा, लुमानी चौहान भूख से व्याकुल अपनी पुत्री को क्षुधा शान्त करने के लिए कैदी स्त्रियों से अरहर की दाल माँगकर खिलाती है। जो खुद एक कवयित्री है। नारी—वर्ग का उस युग में कविता रचना अपराधों की सूची में था। इसलिए महादेवी ने उन दिनों सम्मेलनों में जाना बन्द कर दिया। यह रेखाचित्र एक प्रकार से आत्मकथात्मक संस्मरण है।

''शृंखला की कड़ियाँ''—यह महादेवी वर्मा का बहुचर्चित निबन्ध संग्रह है। इसमें 11 निबन्ध संकलित हैं। इन निबन्धों की रचना प्रायः उस काल में हुई थी जब वे नारी उपयोगी पत्रिका ''चाँद'' का सम्पादन कर रहीं थीं। इसमें उन्होंने भारतीय नारी की विषम परिस्थितियों को अनेक दृष्टि—बिन्दु से देखने का प्रयास किया है। यह ग्रन्थ जन्म से अभिशप्त, जीवन सै संत्रस्त, अक्षय वात्सल्यमूर्ति, भारतीय नारी को समर्पण किया है। इन निबन्धों का उद्देश्य तत्कालीन नारी समाज को जागरण की प्रेरणा देना रहा है। सामान्यतः यह प्रतीत हो सकता है कि नारी जाति के प्रति महादेवी के मन में पक्षपात रहा किन्तु यह दावे से नहीं कहा जा सकता। क्योंकि इसका कोई साक्ष्य और नारी—जीवन के प्रति उनकी भावना का विशेष कारण नजर नहीं आता। फिर वह स्वयं एक प्रबुद्ध नारी और सफल साहित्य—साधिका थीं। उनके साहित्य में नारी की वेदना की पुकार है। नारी—जीवन—जगत के प्रति उनकी गहरी संवेदना भी रही है।

छिपा है जननी का अस्तित्व
रूदन में शिशु का अर्थ विहीन
मिलेगा चित्रकार का ज्ञान
चित्र की जड़ता में ही लीन।

इस प्रकार नारी सुलभ सुकोमल अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का समन्वय महादेवी के चिर सुन्दर के प्रति आत्मनिवेदन और सर्वस्व विसर्जन के भावों को उदात्त और गरिमामय स्वरूप प्रदान करने में सक्षम हुआ है। निजत्व को लय कर देने की उत्कृष्ट आकांक्षा इस बात का स्पष्ट संकेत करती है कि उनकी रागात्मकता शाश्वत और अमर है। इस भाव की पुष्टि असीम मधेपुरा की इन पंक्तियों से भी होती है—

'महादेवी की समूची रागात्मकता वेदनामूलक होते हुए भी मधुर पीयूष रस से प्लावित है जिसमें प्रणय की सुकोमल और सरस भावनाओं को पुष्प प्रकृति के विशाल और विस्तृत आँगन में अपने काल्पनिक किन्तु चिर सुन्दर और सर्वशक्तिमान प्रिय की उपासना मेथ चढ़ने को आतुर दृष्टिगोचर होते हैं।' (महादेवी काव्य के विविध आयाम, पृष्ठ 54)। अतः 'नीहार से दीपशिखा' तक गीतों का सूक्ष्म अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि महादेवी की प्रणयानुभूति एक स्वकीया नारी की भाँति मर्यादा और संयम के धरातल पर अवस्थित है। ◆

पता : डी—560, गली नं.14, भजनपुरा, दिल्ली—53
मो. : 7503676486

सुबह की नींद

❑ डॉ. संजय कुमार

यह बात मुझे बिल्कुल पसंद नहीं कि कोई मुझे सुबह–सुबह उठाए। मैं उन लोगों में से नहीं हूं जो सुबह–सवेरे मुंह–अंधेरे उठना पसंद करते हैं। मैं तो उनमें से हूं जो मुर्गे द्वारा उठाने के लिए कई बार बांग दे कर थक जाने, अखबार वाले के बालकनी में फेंके अखबार के पड़े–पड़े बासी हो जाने, सूरज के लाल से उजला होकर और खुल कर आसमान में आ जाने और दिन चढ़ जाने की ताकतवर घोषणा करने के बाद आराम से उठना पसंद करते हैं। थका मुर्गा, बासी अखबार और चढ़ता सूरज हमेशा से इस बात के गवाह रहे हैं कि मेरे दिन का आरंभ हो चुका है। वैसे भी मुर्गे की बांग का स्थान मोबाइल के अलार्म ने, अखबार की एक दिन पुरानी खबरों का स्थान टीवी न्यूज चैनलों की क्षण–क्षण बदलती ताजा तरीन खबरों ने और सूरज की सुदूर से आ रही रोशनी का स्थान पास जलते बल्ब की दूधिया रोशनी ने ले लिया है। अब चाहे मुर्गा बांग न दे और अखबार वाला न डाले, अखबार, अपना काम चलता रहता है। सूरज भी चाहे तो जा कर बादलों की ओट में छिप जाए, कोई फर्क नहीं पड़ता।

पर कुछ लोग इन बदलते हालातों में भी मुझे सुबह की महत्ता समझाने और नरम–नरम बिस्तर से उठाने के लिए के लिए एड़ी–चोटी का जोर लगाते रहते हैं। शर्मा जी जॉगिंग से लौटते वक्त मेरे यहां आकर ज्ञान बघार जाते हैं कि सुबह–सुबह उठकर सैर पर जाने से शरीर और मन दोनों प्रफुल्लित रहते हैं, लिहाजा आप जल्दी उठने की आदत डालें और रोज मेरे साथ सुबह की सैर पर चलें। हालांकि उन्हें सुबह कि इस सैर की आदत तब लगी है जब एक तरफ से मधुमेह ने और दूसरी तरफ से थायराइड ने आकर उन्हें घेरा है, वर्ना पहले उनकी आदतें भी मेरे जैसी ही थीं। उन्हें मेरे स्वास्थ्य की चिंता से ज्यादा इस बात की ईर्ष्या रहती है कि मैं सुबह की मीठी नींद का आनंद क्यों लेता हूं। वे कहते हैं कि सुबह की इसी मीठी नींद ने उन्हें चीनी की बीमारी दी है। अपना स्वास्थ्य खराब करने के बाद उन्हें दूसरों के स्वास्थ्य की चिंता हो रही है।

मिस्टर नाइक को न शुगर है न थायराइड फिर भी वे सुबह उठते हैं। उनकी बीवी सुबह उठकर रात के जूठे बर्तनों को शोर करने के लिए उकसाती हैं। इस शोर में मिस्टर नाइक को

नींद नहीं आती। उन्हें उठना पड़ता है। वे तो चाहते हैं कि बीवी के हाथ की बनी चाय का प्याला पकड़ते हुए उठें, पर ऐसे खुशनसीब इस दुनिया में हैं ही कितने। जिनकी चाहत उनकी बीवियां पूरी करती हों। चले आते हैं मेरे यहां चीनी डली हुई चाय की चुस्कियां लेने। पर इन चुस्कियों के बीच यह नसीहत भी जरूर देते हैं यदि आप और सुबह उठते तो हम दोनों काफी पहले एक साथ बैठकर यह चुस्कियां ले चुके होते। इससे आपको सुबह उठने की आदत लग जाती और मुझे एक घंटा और पहले चाय मिल जाती।

मेहता साहब से भी मैं सुबह उठने के तमाम फायदे सुन चुका हूं। वे यौगिक क्रियाओं के जानकार हैं। इस ज्ञान को बांटने की उत्कट अभिलाषा बार–बार उन्हें मेरे घर की ओर खींच लाती है, पर यह अभिलाषा पूरी कभी नहीं होती। वे मुझे उगते सूरज की लाल वर्ण की रोशनी के शरीर और मन पर पड़ने वाले प्रभाव और इस रोशनी में योग के लाभ समझाते रहते हैं। लेकिन मैं बस इतना समझ सका हूं कि मेहता साहब के अंदर योग का एक गुरु विराजमान है जो एक अदद से शिष्य की तलाश में व्याकुल है। सुबह–सुबह नर्म बिस्तर मेरे शरीर में गुदगुदी करता रहता है और मन सपनों की एक अनजानी सी दुनिया में विचरता रहता है। इसे छोड़ कर शरीर को कड़ा और मन को नियंत्रित करने का काम तो कोई बावला ही कर सकता है। और फिर सुबह उठकर शरीर को आड़ा–तिरछा करना मुझे पसंद भी नहीं।

कई लोगों से तो यह भी सुन चुका हूं कि सुबह उठ कर याद करने से सबकुछ याद रहता है। पर बड़ी मशक्कत से अपनी परेशानियों, कमजोरियों और असफलताओं को भुला पाया हूं। अब उन्हें याद करके दिमागी परेशानी और दिल की बीमारी के अतिरिक्त और क्या पा सकूंगा? आजकल के जमाने में याद करने से ज्यादा भुलाना अच्छा है। डॉक्टरों की भी यही राय है।

मुझे सुबह जगाने की चिंता में हलकान हो रहे महानुभावों से कई बार कह चुका हूं कि मेरे घर के दरवाजे पर दस्तक आठ बजे के बाद ही दें। क्योंकि आलस्य में सच्चा सुख है और सुबह की नींद में असली मजा। अन्यथा मेरे घर के दरवाजे उनके लिए हमेशा के लिए बंद हो सकते हैं। ◆

पता : संजय गांधी नगर रोड नंबर 10 ए
हनुमान नगर, पटना– 800026.
मो. : 85398 08596

लघुकथाएं

वीआईपी

❑ डॉ. अलका अस्थाना 'अमृतमयी'

मन्दिर में कतारें लगी थीं लोग कतारों से निकल कर आगे बढ़ रहे थे और दूध शिव जी पर चढ़ाया जा रहा था तभी गार्ड ने कतार से एक भले मानुष की तरह कुछ लोगों से कहा–अरे आइये–मैं दर्शन करवाता हूं। कतार में खड़ी प्यारी सी बिटिया हल्की सी मुस्कान में बोली–वीआईपी हो गये हैं। ◆

परीक्षा

फार्म को जमा करने के लिए कतारे लगी हैं। रिशा भी लाइन में लगी है। 10 नं फार्म का है। आज उसने अपने घर की गुल्लक से सारे सिक्कों को इकट्ठा कर फार्म को भर दिया है।

जिससे परीक्षा पास होने के बाद उसकी नौकरी लग जायेगी और वो पुनः गुल्लक भर सकेगी।

दूसरे दिन अख़बार के पेज नं. 1 पर ख़बर में छपा था कि परीक्षा रद्द कर दी जाती है। ◆

पता : 356/24, आलम नगर रोड, बावली चौकी, लखनऊ
मो. : 893488441

दो दिन की ज़िंदगी

❑ आभा श्रीवास्तव

कितने बरसों के बाद मायके आना हुआ था मेरा। वो भी तब आई जब माँ इतनी बीमार हो गईं। डॉक्टर जवाब दे चुके थे। पता नहीं कौन सी व्यस्तता थी मेरी ...आज सोचती हूँ तो स्वयं ही समझ नहीं पाती। लेकिन उस बार घर से किसी का फोन आया था– "आपकी माँ बीमार हैं काफी। याद कर रही हैं आपको।''

मुझे क्या पता था कि माँ की ये चलाचली की बेला होगी और उनके प्राण मुझे देखने के लिए ही अटके होंगे। माँ का निस्तेज चेहरा और पीली आँखें देख कर मुझे रुलाई आ गई। मुझे पहचान कर माँ के अधर कुछ कहने के लिए फड़फड़ाए। मैंने अपने कान उनके अधरों से सटा दिए–" कुन्ती ...के पत्र अलमारी के ऊपर ...," माँ टूटते स्वर में कह रही थीं। मैंने उनके सामने ही अलमारी के पल्ले खोल दिए। अलमारी के ऊपरी तल्ले में रखा छोटा सा चौकोर डिब्बा ला कर माँ को थमा दिया। माँ ने उसे छुआ और हल्के, अस्पष्ट स्वर में बोलीं–" ढूँढ लेना कुन्ती को ...मिल लेना उससे ...,'' और माँ ने दुनिया छोड़ दी। उस समय उनके पास मेरे सिवा कोई नहीं था। मैंने चुपचाप वो डिब्बा संभाल कर अपने पास रख लिया।

कुन्ती बुआ ...मेरी बाल सखी ...माँ की ननद ...बेटी सरीखी। क्यों और कहाँ खो गईं ...मुझे आज तक नहीं पता चला। किसी ने उन्हें ढूँढ़ने की कोशिश भी नहीं की।

कितनी सुन्दर थी बुआ। बिन माँ बाप की बेटी बुआ ...बड़े भाई और भाभी की शरण में रहने वाली बुआ ...बड़े भाई के डर से हकलाने वाली बुआ ...अनारदाने जैसी दंतपंक्ति वाली बुआ ...उजली धूप के झाग जैसी स्वच्छ बुआ ...हिरन के छौने जैसी भोली आँखों वाली बुआ। आज लगातार याद आ रही है उनकी। एक सवाल मन में आता है– बुआ तो कहीं गुम हो गई थीं। ...फिर माँ के पास उनके पत्र ???

माँ बताती थीं कि उनके ब्याह के समय बुआ बस आठ बरस की थीं। वो भाभी का पल्लू पकड़े–पकड़े उनके साथ–साथ डोलती रहतीं। ननद भाभी से पहले उनका माँ–बेटी का रिश्ता बना। बुआ को माँ ने उनके हिस्से का खूब प्यार–दुलार दिया। माँ की गोद में जब मैं आई तब भी ये दुलार कम नहीं हुआ। मेरे लिए तो बुआ सखी, सहेली, बहन सभी कुछ थीं। मेरा बचपन बुआ के साथ ही बीता। हमारी उम्र में भले ही दस साल का अंतर था लेकिन सारे खेल हम साथ ही

खेलते। इक्कड़ दुक्कड़, गुट्टे, गुड़िया का ब्याह, चर्रा अठ्ठा .. .और भी न जाने कौन–कौन से खेल।

मैंने उस चौकोर डिब्बे में रखे पत्रों को खोलना शुरू किया। पहला पत्र–भाभी, मैं उस नरक से निकल आई जहाँ मैं मर–मर कर जी रही थी। मुझे उम्मीद है कि तुम मुझे माफ कर दोगी। दूसरा पत्र–मैं मयंक के साथ हूँ, भाभी और विश्वास करो कि मैं बहुत सुखी हूँ। पता है अब मैं हकलाती भी नहीं हूँ। तीसरा पत्र–कभी मेरी गृहस्थी देखने भी आना, भाभी। हम दोनों को अच्छा लगेगा। हम दोनों– मतलब मैं और मयंक। बहुत से पत्र थे लेकिन वो पत्र घर के पते से नहीं भेजे गए थे। बुआ का पता भी उन्हीं पत्रों में लिखा हुआ था। मयंक...मैंने मयंक को याद किया। वो काफी साल पहले पीली कोठी में रहने आया था। उसके घरवाले और रिश्तेदार किसी के ब्याह के लिए पीली कोठी में रुके थे। पीली कोठी इसीलिए किराये पर दी जाती थी। वही मयंक जो बुआ से कहा करता था– ”कुन्ती, तेरे बाल अभी सोने जैसे हैं। जब चाँदी जैसे हो जायेंगे तब तू और भी सुन्दर दिखेगी।'' ...और कुन्ती बुआ की आँखें झुक जातीं। कपोल सुर्ख हो जाते।

कई बरस पहले की बात है। उस दिन बुआ ने अपने घुटनों तक लम्बे बालों को लपेट कर जूड़ा बनाया था। हमारे कैम्पस में लगा हुआ आम का पेड़ बौराया था। कुछ कैरियाँ आ चुकी थी। हम लोग पत्थर मार–मार कर कैरियाँ तोड़ रहे थे। आठ बरस की मैं और अठ्ठारह बरस की बुआ। अचानक देखा कैरियाँ पटापट गिरने लगीं। पलट कर देखा हमारे गेट पर एक लड़का खड़ा हुआ था। बुआ का हमउम्र। उसके हाथ में गुलेल थी। मैंने दौड़ कर गेट खोला और वो लड़का कैम्पस के भीतर। बुआ अपने आँचल में कैरियाँ बटोर रही थीं। उठ कर खड़ी हुईं तो उनका जूड़ा खुल कर पीठ पर बिखर गया। वो लड़का उन्हें एकटक देखता रहा। उसकी आँखों में कुछ ऐसा था जो बह कर बुआ की आँखों में उतर आया था।

उस दिन से हमारे खेलों में एक और साथी शामिल हो गया था। मयंक अक्सर बुआ के बंधे हुए बाल खोल देता– रेशम, सोने जैसे सुनहरे बाल। खुले बाल लिए बुआ हँसती रहतीं। मयंक से हमारी दोस्ती के बारे में किसी को पता नहीं था। पीली कोठी के पीछे एक छोटा सा ताल था। गर्मी की सुनसान दोपहरी में जब माँ सो जाती या बहुत से कपड़ों की सिलाई करती रहती तब हम लोग मयंक के साथ उस ताल के कमल देखने जाते। फिर उसी ताल में कागज की नाव तैराते। वो बचपन के भोले दिन, स्वच्छ, निश्छल, पवित्र।

ऐसे ही एक दिन हम लोग मयंक के साथ पीली कोठी चले गए। वहाँ शंख फूंकती एक स्त्री ने बुआ के गाल पर ढेर सारा सिन्दूर मल दिया। थोड़ा सिन्दूर उड़ कर उनके बालों पर भी लग गया था। सिन्दूर पोंछते हुए जब बुआ घर वापस आईं तो माँ गम्भीर थीं। बाबा भी दफ्तर से लौट आए थे। शायद उन लोगों को हमारा मयंक से मेलजोल पता चल गया था। बुआ घबरा कर हकलाने लगीं। शायद वो कहना चाहती थीं कि वो मयंक को पसंद करती हैं लेकिन कह नहीं सकीं। मयंक हमारी जात बिरादरी का नहीं था और ये बात बाबा को हजम नहीं हुई। उस दिन के बाद हम लोग पीली कोठी कभी नहीं गए। जिस दिन मयंक जाने वाला था वो हमारे घर के गेट तक आया था। काफी देर तक खड़ा रहा। उसे किसी ने नहीं देखा लेकिन मैंने देख लिया। मैं भागी हुई गेट तक गई। वो मुझे कुछ थमा के चला गया– ताल से लाया कमल का एक फूल और सिन्दूर की डिब्बी। देते हुए बस यही कहा था उसने– कुन्ती के लिए। वो चला गया ... हमेशा के लिए। मैं उदास थी उसके लिए लेकिन उस रात बुआ खूब रोईं।

इसके कुछ दिनों बाद ही बुआ का ब्याह हो गया। अठ्ठारह बरस की बुआ बारहवीं भी पास नहीं कर पाईं। दूल्हा बने फूफा जी मुझे जरा भी पसंद नहीं आए लेकिन वो बाबा को पसंद थे। बस कुंडली का मिलान बढ़िया हुआ था। सजातीय, पैसेवाला लेकिन बुआ से लगभग दुगनी उम्र का। उनका बड़ा बंगला, तीन तीन गाड़ियाँ, चढ़ावे के गहने, अपार धन दौलत बाबा ने देखा लेकिन बुआ का मन किसने देखा ?

पहली विदा में लौट कर आई बुआ और भी अधिक हकलाने लगीं। उनके चेहरे की उदासी माँ ने पढ़ ली और उन्हें अपने आँचल में समेट लिया। माँ भी बाबा के सामने कहाँ कुछ कह सकती थीं। बुआ ससुराल लौट गईं। वो इतनी चुप रहने लगी थीं मानो बोलना ही भूल गई हों। ... और फिर कुछ ही समय बाद पता चला कि बुआ घर से गायब हो गईं। उनके बारे में कुछ पूछने, बात करने की मनाही हो गई। कुछ दिन बातें दबी रहीं लेकिन जल्द ही अड़ोस पड़ोस, रिश्तेदारी में सबको पता चल गया। खूब बदनामी हुई। 'फूफा' नाम का वो व्यक्ति एक दिन कुछ लोगों के साथ हमारे घर आया। बाबा सिर झुकाए बैठे रहे। कुछ कुछ बहसों के बाद वे सब लौट गए। बात आई गई हो गई। धीरे–धीरे सब लोग बुआ को भूल गए लेकिन मुझे बुआ याद रह गईं। कई बरस बाद मेरा भी ब्याह हुआ। प्रेम विवाह ...

विजातीय विवाह। अपनी गृहस्थी में रची–बसी मैं समय के साथ ऐसे ही बहती रही। ...और आज माँ का अंत समय। माँ कितनी ही बातें मन में दबाये हुए चली गईं और मेरे मन में कितने ही संशय ...कितनी शंकाएं ...। द्वार पर घंटी बजाते ही जिसने किवाड़ खोले वो कुन्ती बुआ थीं। उम्र की परछाइयाँ उनके चेहरे पर पसरी थीं। "बुआ मैं ...नीला ...नीलांजना।'' बुआ ने मुझे अंक में भर लिया। मुझे थामे हुए वो भीतर ले गईं। सुन्दर, सुरुचिपूर्ण, साधारण, छोटा सा घर।

"कैसी हो बुआ ?'' मैंने यूँ ही पूछ लिया। "जड़ों से टूट कर भी मैं टूटी नहीं, नीला,'' बुआ हल्के से मुस्करा दीं, ''मयंक है न मुझे सँभालने वाला।'' मुझे अच्छा लगा मुस्कराती बुआ को देख कर। "इतने दिन तुम कहाँ रहीं, बुआ। मैंने तुम्हें हमेशा याद किया।'' "मैं भी कहाँ भूली तुम सबको लेकिन मुझे सब भूल गए," उदासी की एक लहर बुआ के चेहरे पर आ कर चली गई, "दद्दा ने मरते दम तक मेरा मुँह न देखने की कसम खा ली थी। उनकी इज्जत जो दाँव पर लगा दी थी मैंने। छिपते–छिपाते भाभी से एक सूत्र जुड़ा रहा बस। वो माँ हैं न मेरी।'' "माँ भी अब नहीं रहीं, बुआ।'' ...और बुआ की आँखों के कोर गीले हो गए। कुछ देर सन्नाटा...। "कुछ कहूँ, नीला, सुनेगी ?'' बुआ ने भरे गले से पूछा मानो कितना कुछ मन में दबा हो।

"कहो न बुआ,'' "पता है तुझे मेरे सारे सपने ब्याह की पहली रात में ही टूट गए थे जब नशे में धुत मेरे पति ने मेरे पंखों को नोच कर लहूलुहान कर दिया था। मन का सारा बसंत पतझड़ में बदल गया। फिर कुछ ही समय बाद समझ में आया कि उन्हें एक औरत से सन्तुष्टि नहीं मिलती। नातेदारी की लड़कियों से लेकर घर की महरी महराजिन तक पर उनकी गलत दृष्टि रहती है। बहुत झगड़े मचे, बहसबाजी हुई लेकिन कुछ हासिल नहीं हो सका। वो वैसे के वैसे ही रहे। बस मैं ही सद्‌गृहस्थन बन गई। सद्‌गृहस्थन की कोई अपनी इच्छा कहाँ होती है ? रिश्तेदारी निभाती, व्रत उपवास रखती, सास के ताने–उलाहने सुनती। मैं जब कभी पति का घिनौना स्पर्श झेलती तो मुझे उबकाई आने लगती। अगले दिन उसकी गंध को साबुन से घिस घिस कर छुड़ाती। मेरे पति डोलते रहे, भटकते रहे इस औरत से उस औरत तक और मैं जमती गई शिला सरीखी। पति की ये आदत सबको पता थी लेकिन मेरे लिए सलाह थी निभाती रहो, निभा ले जाओ। मार खाना, गाली खाना मेरी नियति बन चुकी थी। मैं न इस घर की रही, न उस घर की। इस दौरान हर दिन मयंक याद आया।

कहते हैं न किसी को मन की गहराइयों से याद करो तो ईश्वर सुन ही लेता है। मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ। एक दिन जब घर का सामान लेने बाजार जा रही थी तो पता नहीं कैसे मयंक मिल गया। उसी ने मुझे पहचाना। अकबका गई थी मैं। फिर उसके गले लग कर हिचकियों से रो दी। मानों कब से रुका बाँध टूटा हो। बिना कुछ कहे मयंक सब समझ गया। उसने अपने पावन स्पर्श से मुझ पाषाण सरीखी अहिल्या में जैसे प्राण फूँक दिए थे। उसका कोई मित्र इस शहर में था जिसके पास वो आया था। मैं लगातार उससे मिलने लगी। ढेरों बातें, कितनी सारी बातें। और पता है नीला, मैं जरा भी नहीं हकलाई,'' बुआ कहती जा रही थीं और मैं सुन रही थी।

"मैं भूल गई कि मैं किसी की ब्याहता हूँ। मेरे मन में हरसिंगार खिलने लगे थे। लेकिन जल्द ही लोगों में कानाफूसी शुरू हो गई। घर तक बात पहुँची। ...और एक दिन मार्केट से लौट कर सामान से भरा थैला रखते हुए मैंने देखा कि मेरे पति का चेहरा चुप्पा और मुठ्ठियाँ कसी हुई थीं। आँखों में बर्छियां लपलपा रही थीं। सास दाँत से अपने होंठ काट रही थीं। गुस्सा टपकने को आतुर। मैं सिहर उठी थी। उस दिन सास और पति ने मुझे बहुत पीटा। ये संभ्रांत और उच्चवर्गीय परिवार था। अब निर्णय मुझे लेना था... जीवन या पति। मैंने जीवन को चुना और अपने तथाकथित पति और ससुराल को छोड़ दिया। मयंक मेरे साथ था। उस दिन से आज तक वो मेरे साथ है, नीला। ...और मैं खुश हूँ, सुखी हूँ।'' फागुन की उस धूपछांही साँझ में बुआ आज भी कितनी सुन्दर दिख रही थीं।

"नीला, मैं बहन थी और तू बेटी। मेरी पढ़ाई छुड़वा कर ब्याह दिया दद्दा ने अनचाहे के संग। बिन माँ बाप की थी न मैं। तूने भी तो प्रेम विवाह किया ...दूसरी जात में। फिर दद्दा कैसे मान गए ? ये समय–समय की बात है या बहन और बेटी का फर्क ?'' मैं सिहर उठी थी बुआ के चेहरे और आँखों का दर्द पढ़ते हुए। बुआ कहती रहीं–" दो दिन की जिन्दगी में जीने के पल बड़ी मुश्किल से मिल पाते हैं, नीला। उन पलों को खुद ही चुराना पड़ता है ...और मैंने उन पलों को चुरा लिया है। तू तो आज की लड़की है, नीला। मुझे बस इतना बता कि मैंने सही किया या गलत ? बस 'हाँ' या 'ना' और कुछ नहीं।'' बुआ का प्रश्न सीधा मुझसे था। बिना कुछ सोचे मेरे मुँह से निकला 'हाँ'...और बुआ की आँखों में कितना कुछ झिलमिला गया। ◆

पता : फ्लैट नं–303, प्लाट नं–26/10,
कुमार एन्क्लेव, वजीर हसन रोड, लखनऊ–226001
मो. : 9651769322

कोट का सफर

❑ स्वाति बरनवाल

''क्या हुआ, सो गई है क्या? उसे उठाकर कह दो जल्दी से चेहरा धोकर तैयार हो जाए। वे लोग आ गए हैं।'' भैया जल्दबाजी में बोलते हुए कमरे से निकल गए। मैं उठी, बाथरूम गई और फेसवॉश से चेहरा धो कर आईने में देखने लगी के कहीं झाग रह तो नहीं गया। फेसवॉश से चेहरा कितना सॉफ्ट हो जाता है, एकदम मलाई की तरह।

"जल्दी—जल्दी साड़ी पहनो वरना देर होगी।" मम्मी ट्रॉली बैग से साड़ी और गहनों का डिब्बा निकालते हुए कहने लगीं।

"माँ लेकिन पहनूँगी कहाँ? यहाँ तो पूरा कमरा मिठाईयों के डिब्बों और पानी की बोतलों से भरा पड़ा है।"

कितनी सारी मिठाइयों के किस्म आज आये हैं। शादी के लिए हाँ न कहती तो इतनी मिठाईयाँ देखने को मिलती क्या? मान लो! मिल भी गई तो एक साथ इतनी सारी मिठाइयाँ चखने को तो नहीं ही मिलती। रेस्टोरेंट में जाओ तो एक ही किस्म की मिठाई खिलाते हैं पापा। हमारे लिए कुछ नहीं और इन 'रजवाड़ों' के लिए दुकान खड़ी कर दी गई है। काजू कतली, रसगुल्ले, गुलाब—जामुन, रसमलाई, राजभोग, क्रीम लगी चमचम और इतनी प्रकार की नमकीनें। मैंने तो नाम भी नहीं सुना। आज तक तो बीकानेरी भुजिया ही आती रही घर में। इसका क्या नाम है? अच्छा जरा इसका नाम पढ़ूँ? पैकेट कितना बढ़िया है, कंपनी का 'लोगो' तो देखो कितना बढ़िया है। अच्छा! पैकेट खोलकर देखती हूँ, कैसे—कैसे डिजाइंस के नमकीन है। अरे! ये फाफड़ा है और ये चकली। डिजाइन तो देखो लग रहा 'गेंडूआर' है। बचपन में कैसे इसको जरा सा छूने पर 'सिक्का' जैसा ऐंठ जाता था और फिर उठाकर किसी को डराने का बहाना मिल जाता था, हम बच्चे तो डर के मारे दूर भाग खड़े होते थे। सबसे ज्यादा तो मैं ही डरती थी। मैं जितना डरती, बच्चे उतना ही डराते थे। कितना बदला है समय! आज भी तो हम वहीं है, जितना डरते है लोग उतना ही डराते है। नहीं! नहीं डरना चाहिए हमें! बिल्कुल भी नहीं! आखिर क्यों डरे? किस बात की डर? हुँह! अच्छा ये क्या है...? अच्छा रतलामी सेव! मैंने तो इसे चखा तक नहीं कभी, पर नाम बहुत सुना है। पैकेट खोलकर चख लेती हूँ।

किसी को क्या ही पता चलेगा... और चलेगा तो चलेगा। क्या ही करेंगे जानकर! कह दूँगी, थोड़ा–सा तो चखी थी। अरे वाह! गजब टेस्टी है! आज तक चखे न होंगे, आज ये भी गधे का जन्म छुड़ा ले। ये पुदीना सेव! पुदीना नाम सुनते ही मेरा जी मिचलाने लगा। कितनी बेकार लगती है पुदीने की चटनी। ये तो भला स्वादिष्ट दिख रहा है। रंगों का सुंदर संयोजन है! और ये...ये मसाला चकरी है। अरे बाप रे! बारह बज गया! बारह बजने के साथ–साथ मेरे चेहरे पर भी 'बारह' बज गया। अब तक क्यों नहीं आई मम्मी। कैसे तैयार होऊंगी? यहाँ पूरा का पूरा सत्यानाश हुआ पड़ा है कमरे का। मिठाइयों, फलों और उसके डिब्बों से। दूसरे कमरे में चली जाऊँ क्या? आखिर वो तो खाली ही है। लेकिन इतना बड़ा आईना नहीं है उस कमरे में। इसमें भी तो नहीं था, भैया के कहने पर होटल के मालिक ने बड़ा सा आईना दीवाल में सेट करा दिया। वो कमरा तो खाली है और पैसों की बर्बादी भी है, जो पापा ने तीन कमरे बुक कर दिए। आखिर दो कमरे में भी काम चलाया जा सकता था। शायद कुछ सोचकर ही तीन कमरा बुक किए होंगे। बुद्धू थोड़े ही हैं मेरी तरह! ''दरवाजा खोलो! दरवाजे पे कोई है।"

"कौन है! मैं हूँ!"

"खोलो दरवाजा!''

"मम्मी! आ गई मम्मी!" मैंने दरवाजा खोला। उनके आते ही मैं उतावली हो गई साड़ी पहनने को लेकर।

"क्यों उतावली हो रही हो? सब कर देती हूँ, सांस तो लेने दो। इतनी बड़ी हो गई हो लेकिन धैर्य नहीं है। एकदम अपने 'बाप' पर गई है...बोलती है तो चुप होने का नाम ही नहीं लेती।"

"मैं कहाँ तैयार होऊंगी मम्मी? कमरा भरा पड़ा है। बेड पर चढ़कर तैयार होऊँगी तो आईना नहीं दिखेगा और आईने के पास खड़ी होकर तैयार होऊँगी तो साड़ी गंदी हो जायेगी।" मैंने उनकी डांट को नजर–अंदाज करके अपनी परेशानी बतानी शुरू की।

''अच्छा सुनो, पहले नाश्ते के लिए मिठाई और फल ट्रे में सजा दो, फिर तैयार होना'' मम्मी कहने लगी।

मुझे पता है! मेरी जैसी कलाकारी मम्मी को नहीं आती है। मुझे सलाद और फलों को सजाने के दस तरीके मालूम है। सब यूट्यूब का कमाल है!

''मम्मी पहले नाश्ता नहीं जायेगा, पहले 'कोल्ड ड्रिंक' जायेगा। लाओ! दो मुझे 'पियो–फेंको' ग्लास का बंडल और कोल्ड ड्रिंक का बॉटल।'' कमरे में आते ही भैया इतना कहकर बेड पर बैठ गए और मेरी साड़ी और गहनों को उठाकर देखने लगे। "ये पहनोगी तुम...? एक तो पतली हो ऊपर से साड़ी...? जब भी पहनती हो लगता है जैसे बांस में खोंस दी गई है साड़ी। जैसे तोते की नजर से मक्के के दानों को बचाने के लिए सूखे बांस को एक शर्ट पहनाकर उसके ऊपर घड़ा और घड़े पर कोयले से आँखें बनाकर काजल करके खेतों में टांग दिया जाता है वैसी ही दिखती हो।" ही. . ही.. ही...!

"मार दूँगी मैं! उसी घड़े से तुम्हारा सिर भी फोड दूँगी। खुद को जाकर देखो आईने में! कैसे दिखते हो! बड़े आए! हुँह!"

''सुनो! सुनती हो, वे लोग आ गए लेकिन लड़का नहीं आया है।'' ये चिंता का स्वर पापा का था।

''क्या? क्यों नहीं आया लड़का? हो सकता है पीछे से अपनी बाइक लेकर आये! या कहीं ट्रैफिक में फंस गया होगा।'' मम्मी कुछ सोचते हुए बोलीं।

''नहीं... मैंने पूछा है लड़के के पिताजी से। वे कह रहे थे लड़का नहीं आया है। ये भी कह रहे थे कि हमारे यहाँ पहली बार 'लड़की' को देखने लड़का नहीं जाता। हमारे यहाँ का प्रचलन नहीं है। हमारे खानदान में बड़े बुजुर्ग और घरवालों की पसंद ही सर्वोपरि होती है।'' पापा कहकर चुप हो गए।

''लेकिन क्यों? कल शाम बात तो हुई थी, और कल शाम तक तो लड़के की मम्मी कह रही थी कि हमारा लड़का भी जायेगा। फिर अचानक ऐसा कह रहे हैं। चलन नहीं है तो झूठ नहीं न कहना चाहिए।'' मम्मी भी स्पष्टीकरण करते हुए चुप हो गई।

''हाँ! लेकिन क्या कर सकती हो? दो मुँहे लोग हैं। मुझे तो पहले से ही शक था, जब कुंडली और बायोडेटा देने की बात हुई थी और जिसे देने में आना–कानी कर रहे थे। उसपर से बायोडेटा में कितनी सारी बातें झूठी थी। शुक्र मनाओ कि जाकर देखने पर सब पता चल गया। झूठ की चादर कितनी भी फैला दो सच को नहीं ढक सकता। आखिर! शक ऐसे ही तो नहीं होता है न। 'यथार्थ और

कल्पना' दोनों के मिलन से पनपता है।'' पापा अपनी शंका जाहिर करते हुए दरवाजे से बाहर निकल गए।

''अब क्या होगा? तुम जाकर पापा को बुला लाओ'' मम्मी चिंतित स्वर में भैया से बोली। भैया गया, और आधे रास्ते से लौट आया पापा के साथ ही। ''क्यों जी! क्या किया जाय? इनकी मंशा ठीक नहीं लग रही है। कैसे लोग हैं, हमको तो समझ नहीं आ रहा है कि क्या करे। क्या भरोसा, जब आज ही ऐसे कर रहे हैं तो हो सकता है कल को बेटी के साथ भी यही करें।'' मम्मी घबराते हुए पापा से कहने लगीं।

''हाँ! हमें भी कुछ ठीक नहीं लग रहा है, ये परिवार। हटाओ, हम तो पहले से ही कह रहे थे परिवार ठीक नहीं है। लेकिन माई के जोर–जबरदस्ती से गए।"

'माई' यानी मेरी प्यारी दादी। जिनको मुझसे ज्यादा अपने बेटे की फिक्र है कि उसे आसानी से दामाद मिल जाए। बाकी मेरी पोती तो सबको देख ही लेगी। उसे भी कोई सता पायेगा क्या...? इसकी कल्पना भी नहीं कर सकती थीं दादी। "माघ के लइका बाघ होला" उनके जुबान से मैं हमेशा सुनती आई थी। क्योंकि मेरा जन्म 'माघ मास' में पूर्णिमा के दिन हुआ था। बचपन से ही इस बात से मैं भी खुद पर गर्व करती थी कि हाँ बहादुर तो हूँ ही। जैसा होगा, अकेले निपट सकती हूँ, जैसे होगा देख लूँगी। मेरी दादी हमेशा कहती कि "लड़कियों को 'मुँहचोर नहीं मुँहजोर होना चाहिए"। सारी फसाद की जड़ उनकी यह सहनशीलता ही होती है। घोर सहनशीलता! मुँहजोर लड़कियाँ अपने लिए स्टैंड लेती हैं। इस वजह से ससुराल में ज्यादा ज्यादती नहीं कर पाते हैं लोग उनके साथ। लेकिन ये बात परिस्थिति और समय देखकर लागू करना पड़ता है। हर समय मुँहजोरी भी ठीक नहीं और मुँहचोरी भी। दादी के साथ जितनी भी ज्यादतियाँ हुईं सब सहनशीलता के कारण हुई थी। वरना किसकी क्या बिसात? खैर...!

"अब क्या किया जाए? सोचना ये है कि किया क्या जाय! नाश्ता कराकर कह देते हैं कि हमलोग लड़की नहीं दिखाएंगे। वापिस भेज देंगे तब अक्ल ठिकाने आएगी। आगे फिर ऐसा करने से पहले सौ दफें सोचेंगे। हम बोल देते हैं, लड़के को लेकर जब आइएगा तो लड़की को दिखायेंगे।'' पापा अपना फैसला सुनाते हुए सुस्ताने लगे। सारी बातों को सुनकर और मम्मी की तिलमिलाहट देखकर चाचाजी बड़ी शांत और विनम्रता से बस इतना भर कहे कि "लड़का इतना भी खराब नहीं है, मुझ पर विश्वास रखिए, लड़की को दुख नहीं होगा। सुख–चैन से ही रहेगी।"

"क्या...? इतना भी खराब नहीं है? कह रहे हैं, यानी लड़के में खराबी तो है...। हम हरगिज अपनी बेटी का ब्याह नहीं करेंगे, जहाँ जरा–सा भी लड़के में खराबी हो या कमी हो। हम देखेंगे, हमारी बेटी देखेगी फिर पसंद आयेगा तभी हम दोनों राजी होंगे और बात आगे बढ़ेगी। बाबा–आदम का जमाना नहीं रहा जो कैसे भी लड़के और घर–परिवार को बेटी सौंप दिए और गंगा नहा लिए। बेटी बोझ नहीं, जिम्मेदारी है। हम अपनी जिम्मेदारी से भागेंगे नहीं। हरगिज नहीं! उसे अच्छी तरह निभायेंगे" मम्मी कहने लगी।

"देखिए! लोग–बाग क्या कहेगा कि लड़की देखने गए थे, लेकिन लड़की पक्ष ने नाश्ता कराकर ही लौटा दिया। कितनी इज्जत जायेगी, उसकी फिक्र नहीं आपको।" चाचाजी ने समझाते हुए कहा।

''जाये तो जाये! मैं ऐसे घर में कतई नहीं करूँगी अपनी बेटी का ब्याह। जहाँ के लोगों से सोच नहीं मिलती होगी हमारी। झूठ फरेब पर रिश्ता जोड़ते हैं। आप ही बताइये? वैसा रिश्ता कब तक टिकता है?... मम्मी, चाचाजी के चेहरे के आगे प्रश्नसूचक चिह्न लगा दी।

मैं इन सारी बातों को सुनकर निराश हो चुकी थी। मुझे तो कल शाम ही उनकी हरकतें समझ जाना चाहिए था। जब वे बता नहीं रहे थे कि कितने लोग आयेंगे मुझे देखने। लेकिन पता नहीं क्या हुआ था मुझे। पता नहीं क्यों! मुझे तो सब मालूम है ही। लड़का सरकारी नौकरी में है। अगर कल को मेरी नौकरी नहीं भी लगती है तो भी लाइफ 'वेल सेटल्ड' रहेगा। हाँ...! पापा को दिक्कत थी कि समाज के चार लोग क्या कहेंगे कि पीएचडी कर रही बेटी के लिए उसके योग्य और सुशिक्षित लड़का न ढूँढ पाए। लेकिन मैं जानती हूँ नौकरी इतनी सस्ती नहीं है। लड़का ग्रेजुएट ही है, तो क्या हुआ...? आखिर 'मिनिस्ट्री ऑफ लेबर' में पोस्टेड है। कम थोड़ी ही है। सैलरी भी अच्छी खासी है। लेकिन सिर्फ नौकरी से तो जीवन सुखी नहीं हो सकता है न। लड़का भी तो अच्छा होना चाहिए। छोटी बहन के लाख कहने पर भी कि दीदी, "मैंने सामने से देखा है! लड़का जितना अच्छा फोटो में दिख रहा है, सामने से एकदम 'भोंदू टाइप' दिखता है।

आपको पसंद नहीं आयेगा।" फिर भी मैं उसे ये कहकर समझा दी कि शक्ल–सूरत मेरे लिए उतना मायने नहीं रखता। असल बात है 'वेल सेटल्ड' होना। इस बात पर मैं कितनी उदार हूँ, मैं ही जानती हूँ कि ये सारी बातें कहने भर की होती है। रूप और गुण में किसी एक चुनना हो तो मैं गुण को प्राथमिकता दूंगी मगर गुण के साथ रूप भी मिले तो सोने पर सुहागा। वर्तमान समय में 'वेल एजुकेटेड' होना अलग बात है और 'वेल सेटल्ड' होना जरूरी चीज। मुझे भी फोटो देखकर लड़का कुछ खास पसंद नहीं आया था। लंबा और गोरा रहते हुए भी माथे पर वो तेज नहीं दिखा, जो मैं असल में चाहती थी। आँखों में हल्का पीलापन और चेहरा भी थोबड़े की तरह और होंठ, मानो खैनी खाने से लटक आया हो। 'ड्रेसिंग सेंस' भी कुछ खास नहीं। फोटो में कोट–पेंट पहने हुए था। 'टाई' भी लगाया था लेकिन कॉलर के पास वाले बटन को बंद नहीं किया था। जिससे बंधी हुई टाई में कसाव नहीं और वो नीचे लटक आया था। खैर...! मैं उसे सब सीखा दूँगी। डोंट वरी! ना–नुकूर करने के बाद भी राजी हो गई थी मैं। अभी क्या समय बिगड़ा है। कह देती हूँ पापा से कि लौटा दे उन्हें। नहीं मिलना मुझे उनसे। लेकिन अचानक मन में आया। ये जल्दबाजी में ली गई फैसला सही नहीं होती। होटल का बिल, खाने का ऑर्डर, इतनी सारी मिठाइयाँ सब बेकार हो जायेगी। बात आगे बढ़ी और अगर ये दुबारा लड़के को लेकर आते हैं तो? फिर सौ तरह की तैयारियाँ। और मेरी साड़ी... उसका क्या... जो पहनने वाली थी। नए कपड़े देखकर मुझे बहुत खुशी होती और बहाने तलाशती हूँ कि कब पहनूँ। और इस साड़ी के लिए तो कई महीनों से इंतजार कर रही थी कि कब मौका मिले और मैं उसको पहनूँ। लाल रंग की साड़ी और हरे रंग का बॉर्डर। कितने सुन्दर खिलते है दोनों एक साथ। तिसपर उसका कॉलर वाला ब्लाउज। कितना सुन्दर है! 'लंबी बांह और कॉलर वाला ब्लाउज' पहनने से मुझे इंटरव्यू वाली फिलिंग आती है। होता यूं है कि मेरा आत्मविश्वास बढ़ जाता है और फिर मैं कितनी सुंदर और सादी दिखती हूँ साड़ी में। मुझे साड़ी बहुत पसंद है। भर फाल कपड़ा जिससे पूरा देह ढक जाता हो मुझे वैसी ही कपड़े पसंद हैं। हाँ! जरूरत और समय के हिसाब से ये पसंद कई बार बदल भी देती हूँ और आगे भी बदलती रहूँगी वो अलग बात है। लेकिन बिना लड़के से मिले, मैं कन्फर्म कैसे होऊँगी कि शादी इसी से करनी है? और यही लड़का मेरे लिए अच्छा होगा। ये सोचकर ही मन रूआँसा हो गया। अब हम सबको भी घर लौट जाना होगा इनके जाने के बाद। सोची थी साड़ी पहनूँगी तो खूब सारी अच्छी–अच्छी फोटोज लूँगी। बैकग्राउंड अच्छा हो तो 'इमेज' अपने आप बढ़िया हो जाती है। यही बात इंसान पर भी लागू होती है। उसके लिए उसकी अगली पीढ़ी को पैर न घिसने होते है। खैर....! मैंने सोच समझकर कहा, ''पापा! मत लौटाईये उन्हें। फिर बात बढ़ी तो आगे दिक्कत होगी। सारी तैयारियाँ हो चुकी है वो सब बेकार हो जायेगा। शांत मन से सोचिए, फिर फैसला लीजिए।'' मेरे इतना भर कहने से दमघोंटू माहौल ताजा हो गया। मम्मी–पापा दोनों नॉर्मल हो गए और चाचाजी आश्वस्त। सबका गुस्सा थोड़े समय के लिए शांत हो गया।

''ठीक है फिर! नाश्ता करवा कर बैठने को कहते हैं। तब तक अक्षरा भी तैयार हो जायेगी।'' पापा आश्वस्त होकर निकल गए कमरे से।

मैं भी तैयार होने के लिए सारा सामान लेकर दूसरे कमरे में चली गई। बनारसी साड़ी, उसकी सेट लगी 'मेटल' की चूड़ियाँ जो बार–बार मेरा ध्यान खींच रही थी। व्हाइट टोन फेस क्रीम, मॉइश्चराइजर, बॉडी लोशन, लिपस्टिक, काजल, बिंदी, आईलाइनर, मेरा डिजिटल घड़ी जो भैया ने हाल ही में गिफ्ट किया था मुझे। सब बेड पर बिखरे पड़े थे। मैंने घर से ही आयरन करके साड़ी को सेट कर लिया था ताकि प्लेट्स बिठाने में दिक्कत न हो। मैंने साड़ी को अच्छे से सेट करके पहन लिया। और बाल संवारने लगी। उफ्फ! ये बाल क्यों नहीं सुलझ रहा, ये भी उलझे हुए है मेरी तरह। सोचती हूँ कुछ हो कुछ और जाता है। सोची थी लड़का आयेगा तो सारे डाउट्स क्लियर हो जाएंगे। खैर...क्या कर सकती हूँ! बालों में तो आज ही 'हेयर कंडीशनर' लगाई थी। अब 'लिवोन' लगाकर भी देख लेती हूँ। जैसे–तैसे बालों को सेट कर लिया। अब मेकअप की बारी आई। वो भी खुद से थोड़ा–बहुत कर लिया। बहुत ज्यादा मेकअप मुझपर सूट नहीं करता तो आदतन मैंने थोड़ा ही कर लिया। डार्क लिपस्टिक लगाने से मुझे शर्म आती है। किसी के सामने लगाकर जाने में तो आँधी आती है। खासकर चाचाजी के सामने। पता नहीं इस इंसान से मुझे इतना डर क्यों लगता है। जो कि इतने सभ्य और शांत हैं। बचपन से लेकर आज तक जिन्होंने कभी डाँटा तक नहीं मुझे। मैंने आईने में जाकर

देखा! मैं पहले से ज्यादा साँवली दिख रही थी। शायद ! मेकअप की वजह से। मैं मेकअप लगाने से गोरी तो नहीं हो पाती, साँवली जरूर दिखने लगती। मैं कहाँ गोरी–साँवली में वक्त बर्बाद करने लगी। जबकि ये रंग कितना पसंद है मुझे। मुझे मेरा रंग बेहद पसंद है! एक हाथ में मेटल्स की चूड़ियाँ और दूसरे में घड़ी। अब सब सही लग रहा। मैं थोड़ा आराम करना चाह रही थी, ताकि नॉर्मल हो जाऊँ। मेकअप भी चेहरे पर अच्छे से सेट हो जायें तो सेल्फी लूँगी। तब तक दरवाजे से भैया की आवाज आई, ''हो गया तुम्हारा? चलो भी अब! उसी समय से तैयार हो रही हो।'' मैं दरवाजा खोलकर बोली, ''देखो तो भैया! मैं कैसी लग रही हूँ? मैं ज्यादा साँवली तो नहीं दिख रही?''

भैया बिना मेरी ओर देखे ही बोला ''बहुत सुन्दर लग रही हो! अब चलो भी, जल्दी से! उसी समय से इंतजार हो रहा है तुम्हारा।''

"ऐसे–कैसे, बिना मेरी ओर देखे ही बता दिये। मेरी ओर देखकर बताओ न भैया! वरना....!"

भैया ने मेरी ओर देखा और कहा, ''बहुत सुंदर दिख रही हो। सच में आज बहुत सुंदर दिख रही हो। तुम शायद साड़ी की वजह से ज्यादा सुंदर दिख रही हो।''...वरना मैं तो जैसे सुंदर दिखती ही नहीं हूँ! हूँह! मैंने मुँह बिचकाया और हम दोनों भाई–बहन खिलखिलाकर हँसने लगे।

''हो गया तुम लोगों का तो चलो भी अब। और ये ट्रे लेकर चलो तुम। मेहमानों के सामने वाले टेबल पर रख देना और सिर झुका कर प्रणाम कर लेना।'' मम्मी ने आदेश देते हुए बताया।

'पंचमेवा' से भरी ट्रे को मैं जैसे ही मम्मी के हाथ से लेने गई, भैया ने मुझसे पहले ही अपनी हाथों में ले लिया। चलो दरवाजे के पास फिर तुम ले लेना। अभी साड़ी सम्भाल कर चलो, वरना साड़ी पैर में फंसी तो गिर जाओगी। मैंने ट्रे से दो काजू उठाकर मुँह में रख लिया। उसने मेरी ओर देखा, लेकिन डाँटा नहीं। हम दोनों भाई–बहन बीस कदम की दूरी नापते दरवाजे के पास पहुँचे।

भैया ने कहा, ''तुम रुको मैं दरवाजा खोलता हूँ। साड़ी ठीक कर लो, फिर तुम ट्रे लेकर अंदर आ जाना धीरे–धीरे और सबको प्रणाम कर लेना। जैसा मम्मी ने बताया सेम टू सेम वैसा ही।'' दरवाजा खुला! पहले भैया गया फिर मैं। मम्मी के आदेशानुसार मैं ट्रे को टेबल पर रखकर सीधी खड़ी हुई। प्रणाम किसे करूं? मैंने नजर उठाकर देखा तो सारे लोग अस्त–व्यस्त थे। कुछ तो सोफे पर बैठे मोबाइल से तेज आवाज पर गीत सुन रहे थे। दो औरतें बेड पर एक दूसरे के तरफ चेहरे किए जाने क्या बातें कर रही थी। एक बूढ़े व्यक्ति थे, शायद लड़के के पिताजी थे। मैं उन्हें फेसबुक पर देखी थी लेकिन कन्फर्म नहीं थी कि यही हैं। हो सकता है किसी रिश्तेदार ने उनकी शादी की सालगिरह पर फोटो डाला होगा जो मेरे भी फ्रेंड लिस्ट में हों।

वे मेरी ओर देखकर मुस्कुराये तो मैंने भी मुस्कुरा कर अपनी निगाहें नीची कर ली। और झुक कर प्रणाम कर लिया जैसा मम्मी ने कहा था। और कुछ देर खड़ी रही कि ये लोग शायद मुझे बैठने को कहें। लड़के के पिताजी ही कह दें कि बैठ जाओ। लेकिन किसी ने न मेरी ओर देखा और न ही बैठने को कहा। मैं खुद से कोने में पड़ी कुर्सी पर बैठ गई। सारे के सारे अपनी मोबाइल में व्यस्त थे। ओह ! कैसे लोग हैं! जरा भी तमीज नहीं इन्हें। ये लड़की देखने आए हैं? शुरू से ही लड़के वाले लड़की देखने आते हैं। कोई मिलने क्यों नहीं आता? क्या देखकर बतलाया जा सकता है कि लड़की अच्छी है या नहीं? घर के लिए यही लड़की सही है? शुरू से ही लोग रूप देखने आते है और बाद में कहते है कि लड़की बुरी निकल गई। अरे भैया! जब रूप देखकर शादी करोगे तो यही होगा। तुम ऐसा करते कि लड़की का रूप और गुण दोनों देखते। लेकिन क्या देखने से पता चल जायेगा? उसके लिए मिलना होगा। एक बार नहीं बार–बार। तब भी पता नहीं चलेगा क्योंकि समय और परिस्थितियों के अनुसार इंसान बदलते रहता है। कल जो थी, मैं आज नहीं हूँ, आज जो हूँ, हो सकता है कल नहीं रहूँगी। जीवन परिवर्तनशील है और परिवर्तनशीलता ही जीवन का सार। अब मुझे इस तनावपूर्ण माहौल में घुटन– सी होने लगी। तब तक लड़के के बड़े भैया बाथरूम से बाहर आएं। उनके ही कहने पर सभी व्यवस्थित होकर बैठें। उन्होंने मुझे कहा कि मैं सामने वाले सोफे पर बैठ जाऊँ, ताकि सबकी नजर मुझपर पड़ सके। मैं उनके कहे अनुसार सोफे पर बैठ गई। थोड़ी देर के बाद उन्होंने अपनी चुप्पी तोड़ी।

''आपका नाम क्या है?'' लड़के के भैया बातचीत शुरू करने की कोशिश करते हुए।

''जी! मेरा नाम अक्षरा है।'' मैंने अपनी आवाज स्थिर रखते हुए कहा।

वे पहले से मेरा बायोडेटा तो पढ़े ही होंगे, शायद उन्हें मुझसे ही मेरा नाम सुनना था। फिर उन्होंने मेरी प्रारंभिक शिक्षा, गाँव–घर और परिवार के बारे में पूछा। वो पूछते गये, मैं बताती गयी।

''आप कविताएं भी लिखती हैं?'' लड़के के भैया जिज्ञासा भरी आवाज में पूछा।

''जी! मैं कविताएं लिखती हूँ।'' अपनी कविताओं के प्रति गर्व महसूस करते हुए मैंने भी बताया।

लड़के के भैया ने अपनी डायरी मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा, ''अक्षरा, क्या आप अपनी एक छोटी सी कविता लिख सकती हैं?''

मैंने डायरी लेते हुए कहा, ''जी! मैं लिख दूँगी।" और मैंने अपनी सबसे सुंदर और छोटी कविता लिख दी। जो 'स्त्री विमर्श' और 'स्त्री अस्मिता' पर केंद्रित थी।

उन्होंने लिया और एक–दो बार पढ़ कर अपने पिताजी की ओर बढ़ा दी। उन्होंने पढ़कर अपनी छोटी बेटी को। मेरी कविता सबकी ओर घूम फिरकर डायरी में बंद हो गई। मुझे लगा इन्हें कविता कुछ खास नहीं लगी या फिर उसका सार नहीं समझ आया। मैंने निराश होकर अपना सिर झुका लिया।

बातचीत के दौरान ही मेरी फोटो ली जाने लगी। कभी साइड से तो कभी आगे से। कभी हाथ की तो कभी पैर की। मेरी नजर खुद ब खुद नीची होती जाती। मैं सोचती ये कह तो दे एक बार कि फोटो लेनी है, अपना चेहरा ठीक से दिखाओ। लेकिन नहीं। इनकी जबान सिली हुई है इस वक्त। जरा भी तमीज ही नहीं है इन्हें। अन्दर ही अन्दर खुन्नस तो बहुत हुई लेकिन क्या करूँ? कोई चारा नहीं सिवा चुप्पी साधने के। मेरे घरवाले भी चुप बैठे हैं, मना नहीं कर सकते हैं? उन्हें देखकर मैं भी चुप रह गयी।

सवालों के घेरे से मैं अभी निकली नहीं थी अभी इम्तिहान बाकी था। लड़के की भौजाई इस दौरान तीन बार कह चुकी थी कि गीत गाकर सुनाओ। और मैं बस 'ना' में सिर हिला देती कि नहीं मन नहीं है। अब लड़के की छोटी बहन की बारी थी। वे लाइन में सबसे पीछे लगी थी शायद छोटी होने के कारण। ''आप खाना बना लेती हैं?'' उन्होंने अपने चेहरे पर एक संक्षिप्त मुस्कान लिए पूछा।

''जी! मुझे खाना बनाना पसंद है"

"क्या–क्या बना लेती हैं?"

"मैं हर तरह का डिशेज बना सकती हूँ, इंडियन डिशेज और चाइनीज डिशेज भी, कुछ यूट्यूब से भी सीखा है मैंने।"

''सबसे अच्छा क्या बनाती हैं?'' उन्होंने पूछा।

''जी! सबसे बढ़िया डोसा बनाती हूँ।'' मैंने कहा।

''अगर बच्चें तुरंत फास्ट फूड बनाने के लिए जिद करें, तो क्या बनाकर खिलायेंगी आप?'' उन्होंने जिज्ञासा वश पूछा होगा शायद लेकिन ये मेरी भूल थी।

''मैगी या सैंडविच या फिर जो उन्हें पसंद होगा!'' मैंने बताया क्योंकि मैं आज बड़ी होकर भी जल्दबाजी में यही बनाकर खाती हूँ और छोटे भाई–बहन को भी खिलाती हूँ। मैंने खुद से पता लगाया कि बच्चों को ये सब कितना पसंद होता है।

''कुशल गृहणी के क्या लक्षण है?'' लड़के की छोटी बहन ने फिर एक बार अपने सवालों के घेरे में मुझे घेरते हुए पूछा।

थोड़ी देर सोचने के बाद मैंने बोलना शुरू किया, ''जी! मुझे इसके बारे में ज्यादा तो जानकारी नहीं है, लेकिन मुझे लगता है कि संगठित और अनुशासित, समय प्रबंधन में कुशल, स्वच्छता और व्यवस्था में कुशल, भोजन और पोषण में कुशल, वित्तीय प्रबंधन में कुशल, परिवार के सदस्यों की देखभाल में रुचि, कुशल गृहणी के लक्षण हो सकते हैं।" मैंने एक सांस में ही अपनी सारी बातें कह दी हालांकि मन ही मन सोच रही थी ये 'कुशल गृहणी' के नहीं, आधुनिक मशीन के लक्षण है लेकिन ये जवाब मेरे घरवालों को बर्दाश्त नहीं होता। आखिर में वो जवाब क्या ही होता, वो तो सच्चाई होती। एक तीखी सच्चाई! मुझे अच्छे से मालूम है। जब कोई सच्चाई को हजम नहीं कर पाता तो उस सच्चाई को जवाब वाली बोरी में रख देता है।

''क्यों सास–ससुर की सेवा नहीं?'' उन्होंने अपनी संदेह भरी निगाहों से फिर प्रश्न किया।

''परिवार में सब लोग आते हैं।'' मैंने खीजते हुए कहा।

जाने कब ये सेशन खत्म होगा और जान छूटेगी

इससे। मुझे इस फॉर्मेलिटी से अब ऊब होने लगी थी।

''आपको सबसे ज्यादा पसंद गाँव है या शहर?'' लड़की के चुप होने पर लड़के के भैया फिर पूछना शुरू किया।

''शहर!'' मैंने खुद को संयत करते हुए बताया।

''क्यों?''

''एक्चुअली! मैं बचपन से गाँव में पली–बढ़ी हूँ। गाँव अच्छा लगता है लेकिन मुझे शहर पसंद है। कारण है कि गाँव की तुलना में शिक्षा के अवसर, चिकित्सा सुविधाएं, रोजगार के अवसर, परिवहन सुविधाएं, मनोरंजन के अवसर, आधुनिक सुविधाएं इत्यादि शहर में अधिक है। जो गाँव की अपेक्षा शहर को विशेष बनाते है।'' मैंने अपनी बातों को रखने की कोशिश की।

''लेकिन आजकल तो ज्यादातर सेलिब्रेटी तो गाँव में ही जाना चाहते हैं। वो सुदूर पहाड़ी इलाकों में फॉर्म हाउस बना रहे हैं और छुट्टियों में अधिक समय वहीं बीता रहे हैं।'' उन्होंने कहा।

''वो अवसर और मनोरंजन की दृष्टि से कुछ दिनों के लिए जाते हैं।'' मैंने अपनी बात रखी।

''तो फिर! आपने तो कहा कि मनोरंजन के साधन केवल शहरों में है।'' उन्होंने मेरी बातों में, मुझे उलझाते हुए कहा।

मैं बोलना चाहती थी लेकिन चुप रही क्योंकि मुझसे पहले ही कहा गया था कुछ प्रश्न गूगली बॉल की तरह आते है और जाते है। उधर ध्यान नहीं देना है। इसलिए मैं थोड़ी देर चुप रही।

उन्होंने फिर कहा, "बताइये, खाना–खाकर नहीं आई हैं, जो आवाज नहीं निकल रही है।'' एक व्यंग्यात्मक हँसी उनके चेहरे पर मुझे दिखी।

"भैया! पर्सनली पूछिए तो मुझे शहर ही पसंद है। चूँकि मुझसे मेरी पसंद पूछी गयी है तो मैं शहर को ही वरीयता दूँगी। गाँव के कष्टों को मैंने पास से देखा है और भोगा है। आज भी कॉलेज, शहर में होने के कारण मुझे काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है।'' न चाहते हुए भी बोलना मेरी मजबूरी बनी।

''सिर्फ कॉलेज की डिग्री ले लेने से क्या होता है।'' चेहरे पर व्यंग्यात्मक हँसी के साथ उन्होंने फिर कहा। ये हँसी मेरे कलेजे में चुभी। मैं बताना चाहती थी लेकिन फिर भी चुप रही। क्या था जो मुझे चुप रहने पर विवश कर देता था। सबके चुप होने से माहौल भी शांत हो गया। एक पल को। तभी फोन की घंटी बजी "जिस भजन में राम का नाम न हो उस भजन को गाना ना चहिए....चाहें बेटी कितनी प्यारी हो उसे घर–घर घुमाना ना चहिए" अभी पूरा गीत सुनाई देता, उससे पहले कॉल रिसीव करते हुए, हाँ..! हेलो...! हेलो. .. हेलो...! शायद नेटवर्क प्रॉब्लम है, मैं इधर से करती हूँ। मैं अपनी नजर तिरछी करके देखी तो किसी का वीडियो कॉल था। मैंने झाँक कर देखा भी लेकिन पता नहीं चला वीडियो कॉल किसका था। उन्होंने कैमरा ऑन कर दिया मेरी ओर। मैंने अपना सिर एक बार फिर नीचे झुका लिया और साड़ी के पल्लू से अपने हाथ ढंक लिए। पैरों को पीछे की ओर खींच लिया ताकि अंगूठा तक न दिखें इन्हें। जिसने भी वीडियो कॉल किया होगा उसे मेरी साड़ी दिखी होगी या फिर मेरी हाथों की उंगलियाँ, सोने की अंगूठी और नेलपेंट लगे नाखून। मैंने अपना चेहरा और हाथ लगभग ढंक लिया था। ज्यादा से ज्यादा दिखता भी तो केवल मेरी हाथ की चूड़ियाँ और डिजिटल घड़ी। मैं चाहती थी मैं मना कर दूँ लेकिन ये शायद मेरी धैर्य की परीक्षा थी। मेरे घरवाले भी देखते रहे। किसी ने कुछ नहीं कहा। सब चुप थे इसलिए मैं भी चुप रही। मुझे लग रहा था मेरे कानों में अभी भी ''सिर्फ कॉलेज की डिग्री ले लेने से क्या होता है।'' गूँज रहा था।

लड़के वाले आपस में बातचीत करने लगे एकदम धीमी आवाज में। ये शायद उनकी आपस की बात थी। चूँकि ये उनकी निजता का सवाल था सो मेरे घरवाले कमरे से बाहर चले गए। उन्होंने मना भी किया, अरे बैठिए न! हमलोग ही बाहर जाते हैं, थोड़ी देर के लिए। और वे चले गए। थोड़ी देर दरवाजे के पास आपस में थोड़ी बहुत बातचीत की और आकर मेरे हाथों में साड़ी, मिठाइयों के डिब्बे और प्लास्टिक में कुछ फल और ऊपर से पाँच सौ के चार नोट रख गए। जो शायद घर से ही तैयार करके लाए थे। इतने भार से मेरा हाथ झुका जा रहा था। तभी भैया ने उसे उठाकर 'टी टेबल' पर रख दिया। मम्मी ने कहा कि सबके पैर छू लो। उनके कहे अनुसार मैंने पैर छू लिए। मम्मी मुझे साड़ी का पल्लू ओढ़ाते हुए कमरे से बुला ले आईं। मेरे मन में जो खीझ और गुस्सा था वो कपड़े और मिठाइयों को

देखकर थोड़ी देर के लिए शांत हो गया। सबने एक साथ खाना खाया। मुझे भी साथ खाने को कहा गया। पहले तो मैंने मना कर दिया लेकिन मम्मी की जिद पर चली गयी। सबके साथ खाना खायी। पहले टेबल पर पुरुष और दूसरे टेबल पर हम चार स्त्रियाँ बैठीं। बैरा ने पहले पानी का ग्लास लगाया, उसके बाद सलाद। हम सब चावल और रोटी के इंतजार में कुछ देर बैठे रहे। लो! पहले रोटी ही आ गई! रोटी, दाल–मखानी, शाही पनीर और परवल की भाजी। हम सबने खाना शुरू किया। फिर धीरे–धीरे चावल, बैगन का भुर्ता, आलू–मटर की रसदार सब्जी, दही, राजभोग और पापड़ भी मिलता गया। सब खाने लगे तो अचानक ही लड़के की छोटी बहन मेरी ओर देखी। मैं किनारे बैठी थी। उन्होंने मुझसे कहा, "अक्षरा! खाने के साथ एक ग्रुप सेल्फी ले लो। तुम साइड में हो, वरना मैं ही ले लेती।"

'साइड क्लिक' से फोटो अच्छी आती है। उन्होंने पासवर्ड खोलकर मेरी ओर अपना मोबाइल बढ़ाया तो मैंने दो–चार सेल्फीज ले ली। सब आपस में बातचीत करने लगे। कुछ बातें मैंने भी की। मम्मी मुझे इशारों में ही कहती रही, चुप रहो तुम ज्यादा मत बोलो। मैंने भी मम्मी से इशारों में ही बता दिया कि ये बातें औपचारिक है। सवालों और जवाबों के लय–ताल में नहीं। इस बीच उन सबकी निगाहें मेरे खाने और खाने के तरीकों पर टिकी रही। लेकिन मैंने उनकी तरफ बिना ध्यान दिये निश्चिंत होकर भर पेट खाना खाया। खाना खाने के बाद पापा और चाचाजी दुकान जाकर पैंट–शर्ट का कपड़ा, साड़ी और उसके साथ जो भी सामान देने थे, जैसे चूड़ी, सिंदूर, बिंदी, रुमाल, तौलिया, गंजी इत्यादि खरीद लाये, उन्हें देने के लिए। उन्हें सुनाते हुए मम्मी कहने लगी थी कपड़े खरीदने जा रहे हैं तो जल्दी से लौट आइयेगा। शायद! सबने सुना भी लेकिन कपड़े खरीद कर आने के बाद उन्होंने लेने से साफ इनकार कर दिया। "अरे! क्या कर रहे हैं! हम पहली बार में लेन–देन नहीं करते हैं। नहीं! हमारा मतलब है कि लड़की को देते है आशीर्वाद के रूप में कुछ न कुछ लेकिन क्षमा चाहते हैं, हम कुछ ले नहीं पायेंगे।" उन्होंने हाथ जोड़ लिया। पापा भी एक–दो बार रिक्वेस्ट करके चुप हो गए। हाथ जोड़कर उन्होंने विदा लिया। उनके साथ ही भैया और चाचाजी भी बाइक से निकल गए। सबके जाने के बाद हमने भी अपने सारे बिखरे पड़े सामानों की पैकिंग की। "बची हुई मिठाइयों को फ्रिज में रख दिया जायेगा तो दो चार दिन तक खत्म न हुआ तो भी खराब नहीं होगा। और सेव और नमकीन स्टील वाले डब्बे में रखकर बंद कर देना याद से।" मम्मी मुझसे कहती रही। पानी का बॉटल इतना आ गया कि आधे से अधिक बच गया। देखकर लाना चाहिए था। अब घर ढोकर भी ले जाने में भी दिक्कत होगी। कौन ढोयेगा इसे, इसलिए यहीं छोड़ देते हैं। लेकिन है तो मिनरल वाटर। घर जायेगा तो पीने के काम आयेगा। यहाँ छोड़ने से क्या फायदा! ले चलते हैं, हाँ! थोड़ी सी दिक्कत होगी लेकिन कोई बड़ा मसला नहीं है। गहनों के डिब्बों को ठीक से पैक करके रख लेना मम्मी। वरना छूट जायेगा तो एक अलग मुसीबत सिर पर आ पड़ेगी। अभी अभी तो एक मुसीबत से निकली हूँ, दूसरी मुसीबत कौन मोल ले। हुँह! बला टली सिर से! कहते–कहते दरवाजे को लॉक करके हम तीनों नीचें रेस्टोरेंट में आकर एक सोफे पर बैठ गए। तुम दोनों यहीं बैठो बेंच पर। भैया और चाचाजी तो अबतक घर पहुँच कर आराम फरमा रहे होंगे।

"हाँ! मैं जाते–जाते फोन कर लेता हूँ" पापा कहते हुए, ऑटो लेने चले गये। पता नहीं कब सुबह से शाम हो गई। होटल के रेस्टोरेंट में हमलोग काफी देर बैठे रहे। तब तक पापा दिखाई दिए। पीले रंग की चमचमाती ऑटो में जिस पर मधुबनी पेटिंग के तर्ज पर 'मछली और मोर' बनाई गई थी। हवा का झोंका झटके से आता और उसके पर्दे को हटा जाता। जब पर्दा हटता तो पापा का चेहरा स्पष्ट नहीं दिखता मगर उनके चश्में के लाल फ्रेम के कारण उन्हें पहचान सकी मैं। ''जल्दी चलो मम्मी! ऑटो आ गया!'' मैं उठ खड़ी हुई और मेरे साथ मम्मी भी। एक बैग को कंधे से लटकाए मैं, और बची ट्रॉली बैग को लिए हम दोनों ऑटो में जा बैठे। पापा की मदद से ट्रॉली बैग को ड्राइवर ने ऑटो के ऊपर रख दिया। ये छोटा वाला बैग हमारे पास ही रहेगा के लहजे में मम्मी ने अपनी गोद में रख लिया।

"तुम दोनों के लिए कुछ लाऊं? खाओगी समोसा, कुरकुरे या चॉकलेट या जो भी कहो खाने को।" पापा थोड़ी देर ऑटो के पास खड़े रहे।

"नहीं, मन नहीं है।" मैं एक लाइन बोलकर चुप हो गई।

"आप भी बैठ जाइए घर पहुँचकर आराम किया जायेगा।" मम्मी बोली। "खाने का कोई चक्कर नहीं है। निश्चिंत रहो तुम लोग, कोई झंझट नहीं होगा खाना बनाने का। सबका पेट भरा होगा या जिसे भूख लगेगी बची हुई मिठाइयों और फलों से काम चला लेगा। उससे भी न हुआ तो दही चूड़ा तो है ही। बस...! चलकर सो जाना है।" पापा कहने लगे तो हम दोनों भी आश्वस्त हो गए। क्योंकि हम दोनो ही थके हुए थें। मेहनत तो कुछ किया नहीं लेकिन ये अजीब–सी थकावट कैसी थी। हम तीनों ही समझ रहे थे। मम्मी शांत, संयत बैठी शायद परिणाम के बारे में सोच रही थी। 'परिपक्वता और उदारता' उनके चेहरे पर आकर उन्हें सुंदर बना रही थी। कितनी सौम्य और शांत। पापा को तो देखने से ही लग रहा था जैसे अभी ये बोल उठेंगे, ये घर भी गया। दूसरे रिश्तें की तलाश में जाने कितना भटकना होगा, बेटी नाम की जिम्मेदारी पूरी करने में। इस रिश्तें के लिए जाने कितनी मेहनत की गई। पता नहीं क्या होगा! जो भी हो ईश्वर की मर्जी के आगे किसकी चलती है। घर जाकर वापिस उन्हें फोन करना होगा कि ठीक से पहुँचे या नहीं। नहीं! नहीं! नहीं होगा इधर से कोई फोन। शायद परिणाम और भविष्य की कल्पना पापा के सामने तैर गयी। थोड़ी देर के बाद उनका मन नहीं माना तो कहने लगे आखिर हमारे यहाँ मेहमान बनकर आए थे। पूछना फर्ज बनता है हमारा। पापा कॉल किए लेकिन रिसीव नहीं हुआ, एक बार और ट्राई हुआ। लेकिन इस बार भी रिसीव नहीं हुआ, तब तक उधर से कॉल आया। जी, आप लोग अच्छे से पहुँच गए न! उधर से क्या आवाज आई पता नहीं। वो दम साधे सीट पर अपना सिर टिकाकर सुस्त हो गये कि बेटी की शादी इतनी आसानी से नहीं होती है। बैठे–बैठे ही नींद उनकी थकी आँखों में उतर आई धीरे–धीरे। ये नींद थकावट की थी। दिन भर भाग–दौड़ करने से सड़क पर उड़ने वाली 'धूल' उनकी आइब्रो और आगे के बालों पर आ चिपकी थी। अजीब–सी उदासी और उसके रंगों के निशान माथे पर 'त्रिपुंड' बना रहा था। मम्मी भी बैग का हैंडल पकड़े सो गई। उनके बाल हवा में उड़ने लगे। पल्लू भी माथे से सरक कर कंधे पर आ गया। ठंड लगने के कारण साड़ी के आँचल को सॉल जैसा लपेट रखा है। मुझे भी अब ठंड लगने लगी। मैंने बैग से अपनी 'कोट' निकाली और पहन ली। बिना परवाह किए कि जरा सी भी हलचल हुई तो इन दोनों की नींद टूट जाएगी। जो कई रातों से सो नहीं पाये थे। मैंने आहिस्ते–आहिस्ते ही निकाली। प्लास्टिक की 'कुरकुराहट' दोनों को नहीं जगा पाया। मैंने आहिस्ते से बैग की चेन भी बंद कर दी। अब मुझे ठंड का जरा भी अहसास नहीं। हवा चलती है, चलती रहे। मैंने ऑटो में आगे लगे छोटे शीशे में झाँक कर देखा। लाल साड़ी पर काला कोट जँच रहा था। पछतावा एक पल को आत्मविश्वास से ढंक गया। चेहरे की मेकअप धुल गयी थी, लिपस्टिक का रंग धुंधलई हो गया था, बिंदी भी पानी पड़ने से कहीं गिर गई थी लेकिन आँखों में काजल अपनी पकड़ बनाई हुई थी। खुले बालों को समेटकर मैंने जूड़ा बनाकर कल्यचर लगा दिया। छोटे बाल बहुत जल्दी खुल जाते हैं और चेहरे को गुदगुदाते रहते हैं तब मुझे बड़ा आनंद आता। लेकिन इस समय मैं ऐसा नहीं चाहती। मैंने फिर शीशे में झाँका। अब मैं कितनी सुंदर और सादी दिख रही हूँ। एकदम सच के करीब। ये 'कोट' पापा पिछले दिसंबर में मुंबई से लाये थे मेरे लिए। जब "राजस्थान पब्लिक सर्विस कमीशन" के तहत 'असिस्टेंट प्रोफेसर' की वेकेंसीज आउट हुई थी। ये सोचते हुए कि इंटरव्यू में पहन कर जायेगी मेरी बेटी। लेकिन मुझे मौका नहीं मिला। नये कपड़ों की शौकीन होने के साथ–साथ सुबह–शाम ठंड लगने वाले इस मौसम के कारण उस कोट को साड़ी के साथ पैक कर लिया था। अंदर एक शोर था, जो बाहर के ट्रैफिक शोर को मद्धिम कर देता। बाहर का शोर मुझे सुनाई नहीं दे रहा था। स्ट्रीट रोड की लाइट जल चुकी थी। इस लाइट में मेरी सोई इच्छा जागकर कोट में समा रही थी। अब मैं सोना चाहती थी मगर नींद आस–पास कहीं नहीं थी। मैंने कई बहाने बनाये उसे ढूँढने में। यहाँ तक कि उसे रात के अंधेरे में टटोलने भी लगी लेकिन कुछ फायदा नहीं। देर तक खुद को भ्रमित करती रही लेकिन वह कहीं दिखाई नहीं दी। आखिर तंग आकर मैं आकाश की ओर देखने लगी। ऑटो सरपट भागे जा रहा था और उसके पीछे–पीछे मेरी हजारों इच्छाएं दौड़ते हुए। मेरे साथ मेरा 'कोट' सफर कर रहा था। कोट का सफर अनिश्चित था और ऊँचाई असीमित। ◆

पता : ग्रा–पो.–कठिया मठिया, परशुरामपुर,
जिला–पश्चिमी चंपारण, बेतिया (बिहार)–845307
मो. : 6201032949

ऋतुओं की रागिनी

अंशिका सक्सेना 'अभिषेक'

यूँ पल–पल बदलती ऋतुओं की छाया ही निराली है,
कभी सर्द, कभी गर्म, तो कभी कोहरे की लाली है।

जहाँ दूर–दूर तक फैले पर्वत रोम–रोम छील रहे,
मन की प्यास में एक अगन–सी घोल रहे,
चारों दिशाओं में जैसे पर्वत चादर ओढ़े हैं,
सूरज की किरणें भी देखो मेघों से बोले हैं।

कभी सर्द, कभी गर्म, तो कभी कोहरे की लाली है,
यूँ पल–पल बदलती ऋतुओं की छाया ही निराली है।

आसमान में जैसे बदरी घिर–घिर आती है,
वर्षा के बाद जैसे किरणें मुख दिखाती हैं,
इन्द्रधनुष भी देखो अब इठला के चलता है,
मौसम भी देखो जाने कितने रंग बदलता है।

कभी सर्द, कभी गर्म, तो कभी कोहरे की लाली है,
यूँ पल–पल बदलती ऋतुओं की छाया ही निराली है।

पल में वर्षा, पल में धूप, पल में देखो सावन आया,
चैत्र–वैशाख से होकर न जाने कब फाल्गुन आया,

सूर्य भी अपना तेज अब हमको दिखलाता है,
आसमान को अपने रंग में लाली से सजाता है।

कभी सर्द, कभी गर्म, तो कभी कोहरे की लाली है,
यूँ पल–पल बदलती ऋतुओं की छाया ही निराली है।

तपती दुपहरी में पेड़ों की छाया है,
ग्रीष्म के बाद जैसे सावन आया है,
मेघों ने देखो सूरज को छिपाया है,
क्या शरद से पहले हेमंत आया है?

कभी सर्द, कभी गर्म, तो कभी कोहरे की लाली है,
यूँ पल–पल बदलती ऋतुओं की छाया ही निराली है।

शीतलहर में सूर्य ने अपना मुख दिखलाया है,
पर्वतों के बीच में एक शिखर ने कहलाया है,
ज्येष्ठ के माह में देखो सावन आया है,
वर्षा ने पल में देखो धूप को छिपाया है।

कभी सर्द, कभी गर्म, तो कभी कोहरे की लाली है,
यूँ पल–पल बदलती ऋतुओं की छाया ही निराली है।

◆

पता : ई–3287, राजाजीपुरम, लखनऊ
मो. :7523020885

खोया पंछी

कौशिकी भारद्वाज

खोया पंछी शांत है
वो खोज रहा है रास्ते
खुद को समझाने के
मन को बहलाने के
खोया पंछी ढूंढ रहा है
घर जाने के रास्ते...
सामने तूफान है
पीछे अब जा सकता नहीं
खोया पंछी लड़ रहा है
अपने डर से आप ही
यूं अकेला फस गया है
वो भंवर मे आज ही
खोया पंछी लड़ रहा है
अपने डर से आप ही
वो अकेला है नहीं तूफान के आगे
पर घिर चुका है सब तरह से पारदर्शी कैद में
खोया पंछी देख रहा है
सब कुछ अपने सामने
ना चीख बाहर आ रही है
ना आंसू निकल पा रहे हैं
खोया पंछी घुट रहा है
अपने डर मे आप ही
खोया पंछी लड़ रहा है
अपने डर से आप ही
जीत उसी की होगी ये वो जानता है
बात भी
फिर भी डर से लड़ रहा है
खोया पंछी आज भी
उस खोए पंछी का मैं
दर्द समझ सकती हूं...
क्यूंकि वो पंछी उड़ता है
मेरे ही साथ में...
खोया पंछी लड़ रहा है
पाने को अपने रास्ते...
इस खोये पंछी के सर पे
हाथ है श्रीनाथ का
वे ही इसको करा देंगे
इस भंवर के पार भी
भव सागर के पार भी
खोया पंछी लड़ रहा है
आज अपने आप से
और हरि हमारे जीत के
इस पंछी को पार लगा देंगे
खोया पंछी फिर हंसेगा
लेकर आंसू आंख में
खोया पंछी पहुंच जाएगा
आखिर अपने रास्ते...

◆

पता : 5/8, राजकीय कॉलोनी, बादशाह नगर, लखनऊ
मो. : 7905193832

कविता

जिन्हें फेंक दिया गया

महेश कुमार केशरी

लड़कियों के जन्म के बाद
माएँ रोयीं
पिता का मन उदास हो गया
उदास हो गए
रिश्तेदारों के चेहरे
सब मन–ही मन दुखी थे
केवल टिटहरी का रोना बाकी था
उस दिन

चूल्हा नहीं जला कई–कई दिनों तक

ना ही कोई गीत गाए गए
जैसा लड़कों की पैदाईश पर होता है
छठियारी की चर्चा किसी ने ना की
सबके मन उदास थे
हताशा में लोग गश खाए जा रहे थे
बस उनका जमीन पर गिरना शेष रह गया था
सोच रहे थे क्या सोचा था
और क्या मिली
घृणा से मुँह टेढ़ा हो गया लोगों का
अगर पता होता लड़की है तो गर्भ में ही !

सबसे आसान तरीका खोजा जाने लगा
उनको निपटाने का

फेंक दिया गया धूरे पर
कचरा समझकर

लेकिन लड़कियाँ उग आईं
फूल बनकर माटी से
महकने लगा बगीचा !

कई–कई बार तो जिंदा ही गाड़ दी गईं !
लड़कियाँ खेतों में
ऋतुएँ बदलीं लड़कियाँ
धान बनकर उग आईं खेतों में

जिन लड़कियों को कहीं जगह नहीं मिली
और सोचा लोगों ने आखिर कहाँ
फेंका जाए इनको
तब लोगों ने आसमान की तरफ देखा

और फेंक दिया लड़कियों को
आसमान में
वहाँ ये लड़कियाँ इंद्रधनुष बनकर निकलीं

लड़कियाँ लौट आईं
बार–बार बारिश बनकर

बार–बार लौंटीं
ओस बनकर

तब बालियां हंसीं
फसल और खेत मुस्कुराए
लड़कियाँ लौंटीं इसी बहाने
जितनी बार हमने फेंक दिया घूरे पर
गाड़ दिया खेतों में
या उछाल दिया हवा में

जितनी बार हमने फेंका
उपेक्षा से
लड़कियाँ बार बार उग आईं
पृथ्वी पर जीवन बनकर !

जब भी देखो किसी को तो मुस्कुरा कर देखो

जब भी देखो किसी
को तो मुस्कुरा कर देखो

करो उसका स्वागत मुस्कुरा
कर
तब भी जब तुम बहुत मुश्किल दौर
से गुजर रहे हो
तब सामने वाला पूछेगा
तुम्हारी खुशी का राज
तुम बस मुस्कुरा देना
सचमुच गौर से अगर देखा जाए
तो इस दुनिया में सबसे
मुश्किल काम है, मुस्कुराना !
तुम लगातार उसको मुस्कुरा कर देखोगे तो
वो भी मुस्कुरा देगा
वैसे समय में भी जब तुम उसको नहीं जानते
कि हम मुस्कुरा कर ही जी सकते हैं
ये दुर्धर्ष जीवन !
लेकिन आदमी जानता है मुस्कुराने को !
मुस्कुरा कर ये जताओ कि
तुम बड़े से बड़े दुःख को भी ठेंगे पर रखते हो !
तुम्हें सबके साथ यही करना है
डरना नहीं है केवल मुस्कुराना है
तब मुस्कुराने पर बात होने लगेगी
भूल जाओगे तुम दोनों तत्काल
अपनी दुःख–तकलीफों को

तुम्हें पता है दुनिया के सबसे ताकतवर लोग
भी मुस्कुराने वाले लोगों से डरते हैं
तानाशाह को भी तुम्हारे मुस्कुराने से
से डर लगता है !

◆

पता : मेघदूत मार्केट, फुसरो,
बोकारो, झारखंड–829144

कविता

मन का पिंजरा

विमल किशोर श्रीवास्तव

पिंजरे से पंछी को लाया हूँ, अब उड़ना सिखलाऊँगा,
मन के भीतर जो पिंजरा है, उसको भी खुलवाऊँगा।

टूटी हैं लोहे की सलाखें, टूटा तन का बंधन,
फिर भी उसके नयनों में है, बीते कल का क्रंदन।
खुला गगन है, धूप नई है, फिर भी मन है डोला,
डर की परछाईं कहती है– ''मत छूना यह भोला।''
धीरे–धीरे प्यार से उसके भय को मैं समझाऊँगा,
मन के भीतर जो पिंजरा है, उसको भी खुलवाऊँगा।

पिंजरे से पंछी को लाया हूँ, अब उड़ना सिखलाऊँगा...

हर आहट पर चौंक उठे वो, जैसे अभी भी कैदी,
आजादी भी लगती उसको, जैसे कोई बैरी।
मैंने उसके संग बैठकर, सपनों के दीप जलाए,
विश्वासों के मंद पवन से, जीवन–गीत सुनाए।
हर धड़कन में नव आशा का सुर फिर से जगाऊँगा,
मन के भीतर जो पिंजरा है, उसको भी खुलवाऊँगा।

पंखों को बस खोल देना ही, उड़ना नहीं सिखाता,
मन के भीतर का अंधेरा, पथ को रोक ही जाता।
तोडूंगा मैं एक–एक कर, भय के सूक्ष्म किनारे,
खुली दिशा में साथ उड़ेंगे, छोड़ सभी संकरे द्वारे।
जीवन के इस मुक्त गगन में, जीना उसे सिखाऊँगा,
मन के भीतर जो पिंजरा है, उसको भी खुलवाऊँगा।

पिंजरे से पंछी को लाया हूँ, अब उड़ना सिखलाऊँगा,
मन के भीतर जो पिंजरा है, उसको भी खुलवाऊँगा

◆

पता : 16, आनन्दपुरम, सेक्टर–12, विकास नगर, लखनऊ–226022

बूढ़ी तथा अन्य कहानियाँ

❑ मंजू किशोर 'रश्मि'

रत्नकुमार सांभरिया हरियाणा गौरव और सुब्रह्मण्य भारती साहित्य पुरस्कार से सम्मानित हैं। साथ ही लेखन के क्षेत्र में सर्वोच्च 'मीरा पुरस्कार' उपन्यास 'सांप' के लिए सम्मानित लेखक हैं। दलित साहित्य के लेखक रत्नकुमार सांभरिया की पुस्तक 'बूढ़ी तथा अन्य कहानियां' डाक से प्राप्त कर हृदय गदगद हो गया। पहले भी मैंने इनकी कहानी की पुस्तकें पढ़ी और हाल ही में सांप उपन्यास भी पढ़ा। जो हाशिए के समाज पर लेखन अभिव्यक्ति का जबरदस्त बेजोड़ नमूना है।

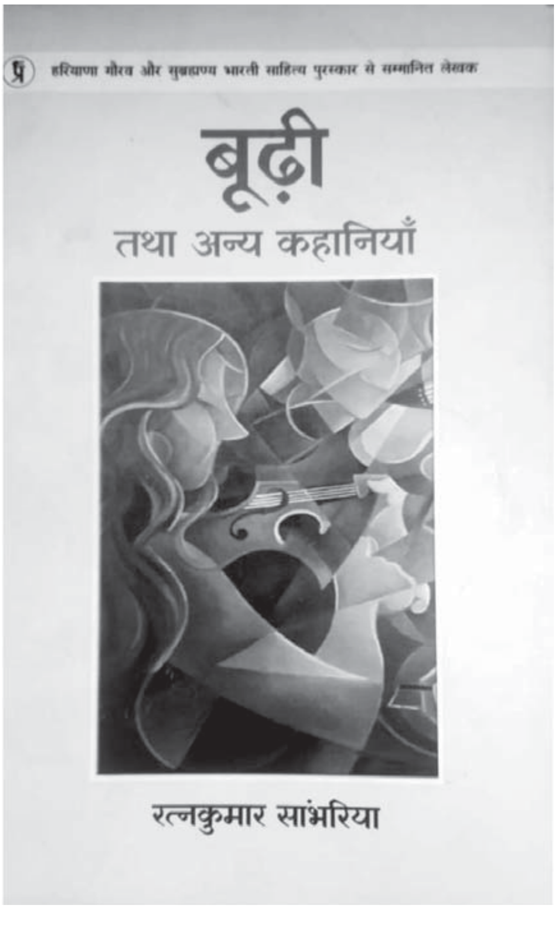

कहानी कहने और सुनने की परम्परा हमारे देश में आदिकाल से चली आ रही है। कहानियां किसी घटना, तथ्य की विस्तृत अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है जिसमें रोचकता के साथ सटीक भाषा का उपयोग और उद्देश्य परकता है। रत्नकुमार सांभरिया के सभी कहानी संग्रह में कहानी के सभी घटक पूर्णता के साथ विद्यमान हैं। सांभरिया जी की कहानियाँ समाज को दर्पण दिखाती हैं सकारात्मक के साथ–साथ कहानियाँ उस काले पक्ष को भी समाज के सम्मुख प्रस्तुत करती है जिससे समाज अपनी आंखें फेरने का असफल प्रयास करता है। लेखक दलित साहित्य की ओर ज्यादा उन्मुख है जिसका उन्होंने गहनता से अध्ययन किया है। लेखक आकाश ओढ़ते धरती बिछाते समाज को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं

'बूढ़ी तथा अन्य कहानियाँ' में भी लेखक रत्नकुमार सांभरिया ने सामाजिक ताने–बाने में रचे–बसे परिवेश उठाये है एवं कहानियों के माध्यम से जीव जगत की मनोदशा की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति की है। ये कहानी संग्रह रचनाकार की संवेदनशीलता विसंगतियों के प्रति जागरूक होकर प्रहार की प्रतिबद्धता रखता है। कहानियां नवाचारों के

साथ पाठक को परोसी गई है। उनके सहज सरल समर्पित और कर्मठता के साथ परिवेश की अभिव्यक्ति है।

पोथी की पहली कहानी 'बूढ़ी' की नायिका तमाम उन अनगिनत महिलाओं का प्रतिनिधित्व करती है जो गरीबी के साथ जीवन के अन्तिम दिनों में एकांकीपन से जूझते हुए भी जीवटता का प्रमाण देती है।

बूढ़ी चुन्नी को जब बड़े घर में बेटी के आने का तार मिलता है तो बूढ़ी शिखर दोपहरी में जलती लू में। बेटी के लिए उल्लास से हुलस उठती हैं। उसके लिए इंतजाम में इकलौती डायजे और प्रेम की निशानी को मास्टर जी को गिरवी रख देती है।

कहानी में लेखक ने हृदय पिघल जाए, ऐसे दृश्य पाठक के सम्मुख प्रस्तुत किये है। गरीबी की घनी चिंताएं, उलझनें, निराशाएं, दुश्वारियां मन मस्तिष्क में पाठक के उग सी जाएं।

इत्तेफाक एक ऐसी कहानी इसमें एक आदमी अपनी नवोढ़ा पत्नी को सिर्फ इस लिए छोड़ देता है वो इतना गौर वर्ण राजकुमार उसकी पत्नी सांवली है। लोग क्या कहेंगे। जवानी में अलग हुए पति–पत्नी जीवन के चौथे दशक में इत्तेफाक से मिल जाते हैं।

बिना समाज की परवाह किए बिना पोती के ब्याह के समय शगुन के ''एक सौ एक रुपये'' दादा राम दयाल की तरफ से'' कह कर। सभी को अपने पूर्व पति का परिचय देती है। स्त्री कितनी सहृदय होती है। अपनों के दुःख दर्द देख कर खुद पर किये अन्याय को आसानी से भुला कर माफ कर देती है।

आज भी महिलाओं के साथ उनके रंग को लेकर पुरुष के मन में जो दोयम दर्जा हैं। उसको प्रकट करती कहानी है जब गुणवत्ता में हजारों गुना पुरुषों से अधिक क्षमाशील, समझदार, व्यावहारिक, संवेदनशील होती हैं। वो कभी भी सजा के बदले सजा को प्राथमिकता नहीं देती है प्रेम ही देना स्त्री अपनी नियति समझती है बिना स्वार्थ।

तीसरी कहानी 'मियाँजान की मुर्गी' ऐसे बूढ़े मियां की जो अपनी ही प्रेम से पाली मुर्गी को भूख से बेहाल हो काटकर खाने पर उतारू हो जाता है भूखी भड़की, भक्षक भए। पेट बड़ा हो गया, जान छोटी।

जीव हत्या पाप है फिर भी दरकिनार कर क्रूरता पर उतारू हो जाते हैं। कहानी का गठन सुदृढ़ तरीके से किया गया है। 'हुकुम की दुग्गी' कहानी शेरू लाल और मेरू लाल दो सगे भाइयों की कहानी है दिन भर दोनों बैठ कर ताश खेलते हैं। लत या आदत व्यक्ति की बुरी होती है। इसके चलते दोनों भाई बैठे बिठाए खाने के लिए परिवार और बाप दादा की कमाई खर्च कर देते हैं

'काल' कहानी में लेखक अकाल की त्रासदी से जूझ रहे मिनखू उसकी पत्नी मल्ली उनकी डेढ़ साल की बेटी मुन्नी और एक बूढ़े अंधे बैल के परिवार की है। जो अकाल की विभीषिका से दो–दो हाथ करता जी रहा होता है। जिनके खेतों में बैलगाड़ियां भर–भर अनाज मंडी में जाता था।वो आज दो समय की रोटी को अनाज मांग कर लाते। अपने अंधे बैल को अपने बच्चे की तरह दुलारते हुए जैसे–तैसे उसके चारे–पानी का इंतजाम करते हैं। खुद्दार मिनखू सरकार के द्वारा खोले अकाल राहत काम में जाता है। तो वहां पर भी मेट की धांधली पक्षपात से अफसरों तक दौड़ता रहा अपने हक के लिए मगर ईमानदारी तो बची ही नहीं गरीबों के हिस्से। आखिर वो अपने प्राणों से प्यारे अंधे बैल को ईश्वर के भरोसे छोड़ देता है

'लाठी' कहानी ने मुझे सबसे ज्यादा प्रभावित किया है। कहानी की बुनावट इतनी संवेदनात्मक कि पाठक के हृदय में सीधे उतर जाएगी। छोटी सी गलतफहमी आशंका से पूरी कहानी की बुनावट की गई।

कहानी पारिवारिक तंत्र और भावनात्मक तंत्र की जुगलबंदी है। अनजान भय और आशंका से रात–भर जूझते चॉद मोहम्मद और सलमा की है। उन्हें लगता है गाय ने रास्ते में पेशाब करने की मामूली कहा सुनी के चलते उनके पड़ोसी जिन्होंने उन्हें गोद में खिलाया है प्यार दुलार दिया।आज उनकी जान के दुश्मन हो गये। सैंतालीस के हिंदू–मुस्लिम दंगों में हमारे अब्बा जान ने उनकी जान बचाई थी। भूल गए वो ये सब। इसी डर और ऊहापोह में अरुणोदय हो गया था। और हरमन चाचा प्यार से चांद मोहम्मद को आवाज लगा रहे थे। चांद मोहम्मद ने देखा हरमन चचा की ऑखों में वहशत नहीं, वफादारी थी।हरमन चाचा ने लाठी उसकी और फेंकते हुए कहा–बेटा डोली की

बिल में बहुत ही जहरीला साँप है। पूरी रात खराब कर दी। मरने में नहीं आ रहा।

चाँद मोहम्मद को जैसे मौत ने छुआ–''अंय''

''तुम उधर से ठोंको। इधर फन निकालेगा, मैं कुचल दूंगा, उसे''।

''बात'' पुरुष की कुनीयती और स्त्रीत्व के प्रति धोखे की कहानी है। सुरती को अपने बच्चे राधू को किसी भी हाल में पढ़ाना है। और परीक्षा में शामिल होने के लिए मास्टर साहब फीस के 300 रुपये मांगते हैं। यहां गुरु तुल्य व्यवहार नहीं, पैसों का व्यापार था।

मरते समय पति से किया वचन याद हो आया। गरीब के लिए पढ़ाई ही उसकी पूंजी है। कितने ही कष्ट उठा लेना। राधू के हाथ में किताब रखना।

कहानी में पति के विश्वास की वीथिका में बेटे के उज्जवल भविष्य के अरमान है उधार साख और शौहरत से मिलती हैं।

न जेवर न जमीन। गरीब का कौन?

धींग अपार धन का धनी। सुरती की देह पर कुदृष्टि रखता था। सुरती उसकी छाया पर थूकती थी।

गरीब मरता क्या न करता। सुरती उसी के ''बात'' गिरवी रख रही हूँ। एक महीने में रकम न लौटाऊं....।

तो... ? धींग ने बात खुलवाने को बात रखी। ''हाँ''

गांव से दो मील दूर ऊन की फैक्ट्री खुली थी।

पैसा इकट्ठा कर लेती। मगर धींग चोर तो अपनी अस्मिता को बचाने के लिए वह धींग पर सिंहनी सी टूट पड़ती है।

'चपड़ासन' कहानी सबसे ज्यादा अच्छी और चर्चित कहानी है। ये कहानी कई विश्वविद्यालयों के कोर्स में पढ़ाई जाती है। 'चपड़ासन' कहानी की भावभूमि में समाज और मनुष्यता के चिंतन के साथ स्त्री अस्मिता की चिंता लेखक ने व्यक्त की है। सहारा समय कथा सम्मान 2005, तत्काल उपराष्ट्रपति द्वारा सम्मानित किया गया था।

'खेत' एक ऐसे बूढ़े किसान की कहानी है जिसे अपने पुरखों की निशानी खेत से जान से ज्यादा प्यार है जो शहर के पॉस इलाके में हैं जिस पर हर उस व्यक्ति की नजर है कोई वहां मॉल बनाना चाहता है कोई मल्टीस्टोरी। बूढ़ा उसे बचाने का हर प्रयास करता है। फिर भी दुनिया की धोखा धडी और चालाकी से उसके जज्बात हार जाते हैं। वाकई सांभरिया जी कहानियाँ समाज के दर्द को गहराई से उकेरती है। दिखने में छोटी लगे, घाव करे गंभीर। राजस्थान पत्रिका के रविवारीय और परिवार परिशिष्ट में वर्ष भर की प्रकाशित कहानियों में चयनित सर्वश्रेष्ठ कहानी का पुरस्कार, 27 मई, 2007 में दिया गया था। सांभरिया जी की कहानियाँ प्रेरणात्मक दस्तावेज की तरह है। समाज में व्याप्त ऐसी स्थिति उभरती है जिन्हें देखकर ह्रदय में झल्लाहट होती है। पश्चाताप होता है हमारी राजनीतिक पृष्ठभूमि में जब ऐसे लोग पांव जमाए खड़े होते हैं जो समाज के प्रति संवेदनहीन हैं तो लेखक अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए समाज को आईना दिखाता है। 'बाढ़ में वोट' की कहानी रचकर। राजनेता किस तरह बाढ़ चपेटे में मुसीबत में फंसीं जनता की सहायता की चिंता न करके वोट बैंक के पैंतरे अपनाते हैं। झूठे मगरमच्छ के आंसू दिखाकर रात को शराब और कबाब में डूबे रहते हैं। उन्हें बस वोट से मतलब है, जनता कल मरती आज मरे। पता नहीं क्यों भूल जाते हैं, लोग हैं तो समाज है और समाज है तो राजनीति है। लेखक पाठकों का परिचय इस प्रकार के समाज कंटकों से कराना चाहता है इस कहानी के माध्यम से।

'पुरस्कार' कहानी एक ऐसी नव लेखिका की कहानी है जो अकादमी अध्यक्ष के पास पुरस्कार के लिए पुस्तक जमा करवाने जाती हैं। आज लेखक और लेखन की क्या दुर्दशा हो गई है। आज पुरस्कार की किस तरह बिक्री हो रही है, इस पर कड़ा विरोध और प्रहार करती हैं।

पुरस्कार की कीमत नीना के सामने अध्यक्ष धौज जी ने अख्तियार की उससे नीना की घायल ह्रदय–कलिका पर एक घाव और पड़ गया था। और ये घाव गहरा था। अस्मिता से अधिक कुछ नहीं।

आखिर नीना अपनी कथा पुरस्कार के लिए प्रेषित अपनी प्रविष्टि वापस ले लेती है। अध्यक्ष महोदय हाथ मलते रह जाते हैं।

'बेस' यानी लिबास कैसे व्यक्त को अभिव्यक्त करता है आज की जातिवाद की अराजकता को अभिव्यक्त करती कहानी है। सवर्ण–निम्नवर्ण के बीच रिश्तों की कहानी है अगनी आदिवासी नवयौवना लड़की है। दीतवार की छुट्टी पर घर जा रही है समाज कंटकों से अगनी डरी सहमी मरी अधमरी चेतना से जंगल में शिकारी, बहेलियों उठाईगीरों, ट्रक ड्राइवर के दुष्कर्मी इरादों से अपनी अस्मिता को सूझबूझ और राजपूती बेस के सहारे मुश्किल से बचाती है। कहानी को इतनी मार्मिकता से लेखक ने पाठकों को परोसा हैं कठोर से कठोर ह्रदय को द्रवित कर देगा। एक महिला के लिए अपनी अस्मत बचाना कितना मुश्किल है। उन्हीं पुरुष समाज से जो घर में बाप, भाई, पति बनकर रहते हैं।और घर से बाहर कैसे वहशीपन सवार हो जाता है 'बिल्लो का ब्याह' एक ऐसी कहानी है जो समाज के हर तबके में देखी जा सकती है। शारदा की छोटी बहन है, सपना और बिल्लों दोनों को समान ममत्व से देखती दुलारती थी। कुछ दिन पहले तक। आज उसी बिल्लो को बिस्तर पर देखने के ख्वाब देखता है। मृत शारदा की तस्वीर में भी आक्रोश भरे नेत्र कंठ दिमाग को दुरदुरा रहे थे। सपना सी बिल्लो को ब्याहोगे। शरम, हया, दीन, दया–धर्म बचे नहीं है भीतर, बस वासना की लपटों में जल गये। बहु विवाह, बेमेल विवाह की जीती जागती तस्वीर पाठकों के सामने रखी गई। आज भी हमारे समाज में किस–किस प्रकार से स्त्री के साथ अन्याय होता है। ह्रदयतल की गहराई को छूने वाली कहानी है।

'भभूल्या' कहानी एक ऐसे खानाबदोश धियाना मजदूर की ह्रदय मारक कहानी है। बस एक बकरा है कहने को परिवार। उसे भी बीट प्रभारी हेडकॉस्टेबल प्रेम सुख अपने और आला कमान अफसर को खुश करने के लिए। धियाना को डरा धमकाकर। दारू मीट पार्टी के लिए मारकर खाना चाहता है। धियाना अपनी जान से प्यारे बकरे के लिए बेबसी में आंसू बहाने के सिवा कुछ नहीं कर पाता। हार कर ईश्वर से प्रार्थना करता है। कुछ कर ईश्वर इस मूक प्राणी की जान बख्श दे। तो अंतिम समय जब बकरे की गर्दन पर छूरा था उसी समय भभूल्या आता है। उसके कारण आंखों में धूल–मिट्टी से छूरे की पकड़ ढीली होते बकरा उछलकर नौ दो ग्यारह हो जाता है। आंखों से ओझल हो जाता है। वो कहावत चरितार्थ हो जाती है–जाको राखे साइयां, मार सके न कोई।

'टोकरी में गॉठ' ये हाशिए के समाज कालबेलिया सरपानाथ के ह्रदय में जलती बदले की आग और जलन की। रमती के रूप यौवन में सरपानाथ वासना में इतना अंधा हो जाता है कि बिना जहर नूंचा सांप धोखे से सरूपानाथ को बेच देता है।

संग्रह की अंतिम कहानी 'आश्रय' आज के माता–पिता की कहानी है जिनके बच्चे सक्षम होने पर बूढ़े माता का ध्यान नहीं रखते। उनकी कद्र नहीं करते। ऐसे कहानी के पात्र सेवक जी बेटे परमेश्वर प्रसाद जी की है। बेटा–बहू दूसरे शहर में अपना खूद आशियाना बनाने के लिए बूढ़े अकेले तन्हा पिता की पैतृक संपत्ति घर बेचना चाहते हैं। महीनों तक खाना तो दूर पानी तक की नहीं पूछते। दुःख तकलीफ की तो दूर की कौड़ी हो गई थी।

आज पूरे एक साल बाद बेटा आया था। आज अपने ही बेटे के अंतस में षड्यंत्र का दंश प्रतीत हुआ।

तो आज परमेश्वर को अपनी जड़ों से कटने का सिला मिला। घर के बाहर एक पिलर पर ''आश्रम'' और दूसरे पर के.के. सेवक की नेमप्लेट लगी देखी। भीतर वृद्ध लोगों की हंसी के ठहाकों की आवाज गूंज रही थी।

इस संग्रह की तमाम कहानियां पाठकों के ह्रदय को छूकर चिंतन की और उन्मुख करेंगी। कहानियों की बुनावट और कसावट कथ्य सटीक है। कहानी के तत्वों और घटकों का संग्रह की प्रत्येक कहानी में सफलतम तरीके से प्रयोग किया गया। कहानियों की पटकथा और पात्रों के संवादों में आधुनिकता के साथ पारंपरिक, सांस्कृतिक दर्शन भी होते। भाषा की दृष्टि से कहानी संग्रह में रोचकता के साथ–साथ सरल वाक्यों का समुच्चय है जो सभी उम्र के पाठकों के लिए समझनें में आसान और रोचकता भरा है। कहानी संग्रह की सभी कहानियां नवाचारों के साथ समाज की आखराइयों का आईना दिखाती हैं। ◆

पता : वीएचई–119, विवेकानंद नगर,
कोटा–राजस्थान–324005
मो. : 8441019846

आसपास बनारस कर लूँ....!

–जितेन्द्र कुमार दुबे

बंदिशें तमाम आई.....
नौजवानी की दहलीज पर ही प्यारे
जानते हो तुम भी ....बेहद करीब से
फिर चाहते क्यों हो.....?
कि सुर–लय–ताल अपना....
मैं सबसे सरस कर लूँ....

जब आनन्द आता है उन्हें....!
पथरीली पगडण्डियों पर ही प्यारे...
फिर मुझे क्या पड़ी है बताओ....?
कि उनके लिए....मेहनत करके....
राह सारी मैं चौरस कर लूँ....

किसी कोने में....चेहरा छुपा के....
बैठे हैं जब लोग यहाँ के सारे.....
फिर आप ही बताओ प्यारे कि मैं...!
उनसे कैसे कोई बतरस कर लूँ....

गुरबत में ही जीना है....!
यहाँ जब मुझको प्यारे....फिर...
किस बात के लिए मैं.....
खुद को उनके परवश कर लूँ....

गहराईयाँ जो बक्शी हैं....!
विधाता ने समुद्र सी मुझको....
फिर अनायास ही क्यों......?
मैं खुद को पर्वत कर लूँ...

राह ढूँढ़नी है जब खुद ही....!
यहाँ जमाने में मुझको प्यारे....
फिर कदम–कदम पर....!
खुद को क्यों मैं विवश कर लूँ....

मन–मस्तिष्क दोनों ही....!
कहते हैं अक्सर ही प्यारे...कि...
ढल जाओ ज़माने के संग तुम भी...
और अपनी बोली....!
अब थोड़ी सी कर्कश कर लो....

बुद्धि भी अपनी कुटिल होकर....!
कहती है अक्सर यही कि...
इस छछन्दी दुनिया में....!
अपना स्वभाव एकरस कर लो....

जब हर ओर मिल रहे हैं....!
सिरफिरे ही यहाँ पर....
फिर बेहतर यही है कि....!
जो मिले प्यार से यहाँ...
उनको अँकवार में भरकर अपने...!
अनायास ही.....आसपास अपने....
मैं बनारस कर लूँ.....!!

◆

पता : अपर पुलिस उपायुक्त,
हजरतगंज, लखनऊ–226001
मो. : 8299195923

भारत सरकार के रजिस्ट्रार आफ न्यूज पेपर्स की रजिस्ट्री संख्या 33122/78
भारतीय डाक विभाग की डाक पंजीयन संख्या–एल.डब्लू./एन.पी. 432/2006

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश

प्रमुख प्रकाशन

उत्तर प्रदेश मासिक : समकालीन साहित्य, संस्कृति, कला और विचार की मासिक पत्रिका समूल्य उपलब्ध एक अंक रु. 15/– मात्र, वार्षिक मूल्य रु. 180/– मात्र।

नया दौर (उर्दू) : सांस्कृतिक एवं साहित्यिक विषय की एक उर्दू मासिक पत्रिका, एक अंक रु. 15/– मात्र, वार्षिक मूल्य रु. 180/– मात्र।

वार्षिकी (हिन्दी/अंग्रेजी) : उत्तर प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों के विस्तृत आंकड़ों एवं सूचनाओं का वार्षिक विवरण मूल्य रु. 325/– मात्र।

महत्वपूर्ण प्रकाशनों के लिए सम्पर्क करें

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र.
दीनदयाल उपाध्याय सूचना परिसर, पार्क रोड, लखनऊ
उत्तर प्रदेश के समस्त जिला सूचना कार्यालय

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. स्वत्वाधिकारी के लिए विशाल सिंह, निदेशक, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. लखनऊ द्वारा प्रकाशित तथा प्रकाश पैकेजर्स, लखनऊ में मुद्रित